

Chapter चौदह

ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की स्तुति

इस अध्याय में ब्रह्मा द्वारा नन्दनन्दन भगवान् कृष्ण की स्तुति का वर्णन हुआ है।

भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्रह्मा ने सर्वप्रथम उनके दिव्य अंगों की स्तुति की और फिर यह घोषित किया कि उनकी माधुरी की मूल पहचान को समझ पाना उनके ऐश्वर्य की अपेक्षा अधिक कठिन है। वैदिक प्रमाणों से प्राप्त दिव्य ध्वनि के श्रवण तथा कीर्तन की भक्तिमयी विधि द्वारा ही भगवान् की अनुभूति हो सकती है। वैदिक प्रमाण के अतिरिक्त अन्य विधियों से ईश्वर की अनुभूति करने का प्रयास व्यर्थ है।

असीम आध्यात्मिक गुणों के आगार भगवान् का रहस्य अचिन्त्य है। इसे समझ पाना निर्विशेष ब्रह्म से भी अधिक कठिन है। केवल भगवत्कृपा से ही उनके यश को समझा जा सकता है। अन्त में इसकी अनुभूति होने पर ब्रह्मा ने अपने कार्यों की बारम्बार भर्त्सना की और यह माना कि ब्रह्माण्ड के परम आश्रय श्रीकृष्ण ही उनके अपने पिता, आदि नारायण हैं। इस तरह ब्रह्मा ने भगवान् से क्षमा-याचना की।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने भगवान् के अचिन्त्य ऐश्वर्य का गुणगान किया और जिन जिन बातों में ब्रह्मा तथा शिव विष्णु से भिन्न हैं, जिन जिन कारणों से भगवान् देवताओं, पशुओं इत्यादि की योनियों में जन्म लेते हैं, जिस तरह से भगवान् लीलाएँ करते हैं, उन सबका तथा भौतिक जगत की नश्वरता आदि का वर्णन किया। भगवान् को जान लेने पर जीवात्मा भव-बन्धन से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि मोक्ष तथा बन्धन दोनों ही असत्य हैं क्योंकि जीव के बद्ध होने से ही बन्धन तथा मोक्ष उत्पन्न होते हैं। भगवान् कृष्ण के साकार रूप को भ्रामक मानकर मूर्ख लोग भगवान् के चरणकमलों को छोड़कर परमात्मा की अन्यत्र खोज करते हैं। किन्तु उनकी व्यर्थ की यह खोज उनकी मूर्खता का स्पष्ट प्रमाण है। भगवान् की कृपा के बिना भगवान् के सत्य को समझने का कोई भी सरल उपाय नहीं है।

इस निष्कर्ष पर पहुँच कर ब्रह्मा ने ब्रजवासियों के सौभाग्य का विश्लेषण किया और तब स्तुति की

कि अच्छा होता यदि वे स्वयं एक तृण, कुंज या लता के रूप में वहाँ उत्पन्न हुए होते। वृन्दावनवासियों के आवास भौतिक जगत के बन्दीगृह नहीं हैं अपितु ज्ञानियों तथा योगियों द्वारा भी इन आवासों की कामना की जाती है। दूसरी ओर, कोई भी आवास जिसका भगवान् कृष्ण से सम्बन्ध नहीं होता है, वह भौतिक जगत का बन्दीगृह है। अन्त में ब्रह्मा ने भगवान् के चरणकमलों पर अपने आप को पूर्णतया समर्पण कर दिया और बारम्बार प्रशंसा करते हुए उनकी प्रदक्षिणा की और विदा ली।

तत्पश्चात् कृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा चुराये गये सारे पशुओं को एकत्र किया और उनको लेकर यमुना तट पर पहुँचे जहाँ ग्वालबाल भोजन कर रहे थे। जो मित्रगण, पहले से वहाँ बैठे थे वे ही अभी भी वहीं पर थे। कृष्ण की माया के कारण उन्हें इसका रंच भर भी पता नहीं चला कि क्या हुआ है। अतः जब कृष्ण बछड़ों के साथ आये तो उन्होंने पूछा, “अरे! आप तो इतनी जल्दी लौट आये। बहुत अच्छा हुआ। जब तक आप नहीं थे, हमने एक कौर भी नहीं तोड़ा। आइये और खाइये।”

ग्वालबालों की बात पर भगवान् कृष्ण हँसते हुए उनके साथ भोजन करने लगे। भोजन करते हुए कृष्ण ने किशोर मित्रों से अजगर के चर्म की ओर संकेत किया, तो बालकों ने सोचा, “शायद कृष्ण ने अभी अभी इस भयानक सर्प को मारा है।” बाद में उन्होंने वृन्दावनवासियों को कृष्ण द्वारा अघासुर के वध का वृत्तान्त कह सुनाया। इस तरह ग्वालबालों ने भगवान् कृष्ण की बाल्यकाल (१-५ वर्ष) की लीलाओं का वर्णन किया यद्यपि भगवान् की पौगण्ड आयु (६-१० वर्ष) प्रारम्भ हो चुकी थी।

शुकदेव गोस्वामी यह बताते हुए इस अध्याय को समाप्त करते हैं कि गोपियाँ किस तरह कृष्ण को अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करती थीं।

श्रीब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय

गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।

वन्यस्त्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-

लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्मा ने कहा; नौमि—मैं यशोगान करता हूँ; ईड्य—हे पूज्य; ते—आपका; अभ्र—काले बादल की तरह; वपुषे—शरीर वाले; तडित्—बिजली की भाँति; अम्बराय—जिसके वस्त्र; गुञ्जा—घुंघुची से बने; अवतंस—(कान के) आभूषण; परिपिच्छ—तथा मोर पंख; लसत्—शोभायमान; मुखाय—जिसका मुखमंडल; वन्य-स्त्रजे—वन फूलों की माला

पहने; कवल—कौर; वेत्र—दंड; विषाण—भैंस के सींग का बना बिगुल; वेणु—तथा बाँसुरी; लक्ष्म—लक्ष्मणों से युक्त; श्रिये—जिसका सौंदर्य; मृदु—मुलायम; पदे—जिसके पाँव; पशु-प—ग्वाले (नन्द महाराज) के; अङ्ग-जाय—पुत्र को।

ब्रह्मा ने कहा : हे प्रभु, आप ही एकमात्र पूज्य भगवान् हैं अतएव आपको प्रसन्न करने के लिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ और आपकी स्तुति करता हूँ। हे ग्वालनेश पुत्र, आपका दिव्य शरीर नवीन बादलों के समान गहरा नीला है; आपके वस्त्र बिजली के समान देदीप्यमान हैं और आपके मुखमण्डल का सौन्दर्य गुञ्जा के बने आपके कुण्डलों से तथा सिर पर लगे मोरपंख से बढ़ जाता है। अनेक वन-फूलों तथा पत्तियों की माला पहने तथा चराने की छड़ी (लकुटी), श्रृंग और वंशी से सज्जित आप अपने हाथ में भोजन का कौर लिए हुए सुन्दर रीति से खड़े हुए हैं।

तात्पर्य : पिछले अध्याय में ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण के ग्वालमित्रों तथा उनके बछड़ों को चुरा कर उनकी परीक्षा लेनी चाही थी। किन्तु जब कृष्ण ने रंच भर अपनी योगशक्ति प्रदर्शित की तो ब्रह्माजी पूर्णतया मोहित हो गये और अब वे अत्यन्त विनय एवं भक्ति भाव से उन्हें सादर नमस्कार करके उनकी स्तुति करते हैं।

इस श्लोक में कवल शब्द कृष्ण द्वारा बाँसुरी के हाथ में चावल तथा दही के कौर का सूचक है। सनातन गोस्वामी के अनुसार कृष्ण अपने हाथ में गाय चराने वाली छड़ी लिये थे और बाँसुरी के श्रृंग दबाये थे। उनकी वंशी उनकी कमर पेटी के नीचे लगी थी। रंग-बिरंगे जंगली खनिजों से अलंकृत सुन्दर बाल-कृष्ण वैकुण्ठ के ऐश्वर्य को लजा रहे थे। यद्यपि ब्रह्मा ने भगवान् के असंख्य चतुर्भुज रूप देखे थे किन्तु अब उन्होंने द्विभुज कृष्ण के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित कर दिया जो नन्द महाराज के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे। ब्रह्माजी ने इसी रूप की स्तुति की।

अस्यापि देव वपुषो मदनग्रहस्य

स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।

नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण

साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

अस्य—इसका; अपि—भी; देव—हे प्रभु; वपुषः—शरीर; मत्-अनुग्रहस्य—जिसने मेरे ऊपर कृपा दिखलाई है; स्व-इच्छा-मयस्य—जो अपने शुद्ध भक्तों की इच्छा से प्रेरित होकर प्रकट होते हैं; न—नहीं; तु—दूसरी ओर; भूत-मयस्य—पदार्थ की उपज; कः—ब्रह्मा; अपि—भी; न ईशे—मैं समर्थ नहीं हूँ; महि—शक्ति; तु—निस्सन्देह; अवसितुम्—अनुमान लगाने में;

मनसा—मन से; अन्तरेण—जो नियंत्रित होती तथा विरत होती है; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तव—आपकी; एव—निस्सन्देह; किम् उत—क्या कहा जाय; आत्म—आप में; सुख—सुख के; अनुभूतेः—आपके अनुभव का।

हे प्रभु, न तो मैं, न ही अन्य कोई आपके इस दिव्य शरीर के सामर्थ्य का अनुमान लगा सकता है, जिसने मुझ पर इतनी कृपा दिखाई है। आपका शरीर आपके शुद्ध भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए प्रकट होता है। यद्यपि मेरा मन भौतिक कार्यकलापों से पूरी तरह विरत है, तो भी मैं आपके साकार रूप को नहीं समझ पाता। तो भला मैं आपके ही अन्तर में आपके द्वारा अनुभूत सुख को कैसे समझ सकता हूँ?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद “भगवान् श्रीकृष्ण” (१ अध्याय १४) में लिखते हैं कि इस श्लोक में ब्रह्मा ने निम्नलिखित स्तुतिपूर्ण भाव व्यक्त किया, “ग्वालबाल के रूप में आपका आविर्भाव भक्तों के लाभ के लिए हुआ है। यद्यपि मैंने आपकी गौवें, बालक तथा बछड़े चुराकर आपके चरणकमलों में अपराध किया है किन्तु मैं समझ सकता हूँ कि अब आप मुझ पर कृपा दिखा रहे हैं। यह तो आपका दिव्य गुण है कि आप अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल हैं। अपने प्रति आपके वात्सल्य के बावजूद मैं आपके शारीरिक कार्यों के सामर्थ्य का अनुमान नहीं लगा सकता। जब इस ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि पुरुष मैं, ब्रह्मा, भगवान् के बाल-रूप शरीर का अनुमान नहीं लगा सकता तो अन्यो के विषय में क्या कहा जाय? और यदि मैं आपके बाल-रूप शरीर की आध्यात्मिक शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता तो भला आपकी दिव्य लीलाओं को कैसे समझ सकता हूँ? अतएव, जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, जो कोई भगवान् की दिव्य लीलाओं, उनके प्राकट्य तथा तिरोधान को रंचमात्र भी समझता है, वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद भगवद्धाम में प्रवेश करने का पात्र बन जाता है। वेदों में इसकी पुष्टि इन शब्दों में सहज रूप में हुई है : पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जान लेने पर मनुष्य जन्म-मृत्यु के बन्धन से पार पा सकता है। इसलिए मैं तो यही कहूँगा कि लोग आपको मानसिक ज्ञान द्वारा समझने का प्रयास न करें।”

जब ब्रह्मा ने भगवान् के पद का अनादर किया, तो कृष्ण ने सर्वप्रथम उन्हें अपनी दिव्य शक्ति प्रदर्शित करके मोहित किया। जब ब्रह्मा उनके विनीत भक्त बन गये तो उन्होंने अपना साक्षात् दर्शन दिया।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् कृष्ण का दिव्य शरीर अपने स्वांशों द्वारा अपने

कार्य सम्पन्न कर सकता है, जिन्हें *विष्णु-तत्व* कहते हैं। ब्रह्मा ने *ब्रह्मसंहिता* (५.३२) में कहा है—
अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रिय वृत्तिमन्ति। यह श्लोक न केवल इतना ही सूचित करता है कि भगवान् अपने शरीर का कोई भी कार्य अपने किसी अंग द्वारा सम्पन्न कर सकते हैं अपितु वे अपने विष्णु अंश के या किसी भी जीव के नेत्रों द्वारा देख भी सकते हैं। इसी प्रकार वे विष्णु या जीव-अंश के कानों से सुन सकते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि भगवान् अपनी किसी भी इन्द्रिय से कोई भी कार्य कर सकते हैं किन्तु कृष्ण रूप में अपनी लीलाओं में वे सामान्यतया अपनी ही आँखों से देखते हैं, अपने ही हाथों से छूते हैं और अपने ही कानों से सुनते हैं। इस तरह वे अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर ग्वालबाल की तरह आचरण करते हैं।

वैदिक ज्ञान का विस्तार ब्रह्मा से होता है जिन्हें *श्रीमद्भागवत* के प्रथम श्लोक में आदि कवि कहा गया है। तो भी ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण के दिव्य शरीर को जान नहीं पाये क्योंकि वह सामान्य वैदिक ज्ञान की पहुँच से बाहर है। भगवान् के समस्त दिव्य रूपों में गोविन्द का द्विभुज रूप—कृष्ण—ही आदि एवं परम रूप है। अतः गोविन्द द्वारा मक्खन चुराने, गोपियों का स्तन-पान करने, बछड़े चराने, वंशी बजाने तथा बालक्रीड़ाएँ करने की लीलाएँ भगवान् विष्णु के अंशों के कार्यकलापों की तुलना में अद्वितीय हैं।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव

जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।

स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-

ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ज्ञाने—ज्ञान के लिए; प्रयासम्—प्रयास; उदपास्य—त्यागकर; नमन्तः—नमस्कार करते हुए; एव—केवल; जीवन्ति—जीवित रहते हैं; सत्-मुखरिताम्—शुद्ध भक्तों द्वारा उच्चारित; भवदीय-वार्ताम्—आपकी कथा; स्थाने—अपने भौतिक स्थान में; स्थिताः—स्थित रहकर; श्रुति-गताम्—सुन करके प्राप्त; तनु—अपने शरीर द्वारा; वाक्—शब्द; मनोभिः—तथा मन के द्वारा; ये—जो; प्रायशः—अधिकांशतः; अजित—हे अजेय; जितः—जीते गये; अपि—फिर भी; असि—हो जाते हो; तैः—उनके द्वारा; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में।

जो लोग अपने प्रतिष्ठित सामाजिक पदों पर रहते हुए ज्ञान-विधि का तिरस्कार करते हैं और मन, वचन और कर्मों से आपके तथा आपके कार्यकलापों के गुणगान के प्रति सम्मान व्यक्त करते हैं और आप तथा आपके द्वारा गुंजित इन कथाओं में अपना जीवन न्योछावर कर देते हैं, वे

निश्चित रूप से आपको जीत लेते हैं अन्यथा आप तीनों लोकों में किसी के द्वारा भी अजेय हैं।

तात्पर्य : उदपास्य शब्द स्पष्ट सूचित करता है कि मानसिक चिन्तन की विधि (ज्ञान) द्वारा परम सत्य को समझने का तनिक भी प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे ईश्वर का अपूर्ण एवं निर्विशेष ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। जीवन्ति शब्द इसका द्योतक है कि जो भक्त कृष्ण का सदैव श्रवण करता है, वह भगवद्धाम जाता है भले ही वह कुछ भी न करे और केवल भगवान् विषयक कथाएँ ही सुनता रहे।

श्रील सनातन गोस्वामी ने *तनुवाङ्मनोभिः* शब्दों की व्याख्या तीन प्रकार से की है। भक्तों के प्रसंग में, कि वे मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् कृष्ण को जीतने में समर्थ होते हैं। इस तरह कृष्णभावनामृत में पूर्ण बनकर वे अपने हाथों से उनके चरणकमलों का स्पर्श कर सकते हैं, अपनी वाणी से उन्हें बुला सकते हैं और उनका चिन्तन करके अपने मन के भीतर उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

अभक्तों के प्रसंग में, *तनुवाङ्मनोभिः* शब्द *अजित* के द्योतक हैं और सूचित करते हैं कि जो लोग कृष्ण की प्रेमाभक्ति नहीं करते वे अपने शारीरिक बल, वाक्चातुर्य या मानसिक शक्ति से परम सत्य को जीत नहीं सकते। सारे प्रयासों के बावजूद परम सत्य उनकी पहुँच के परे रह जाता है।

जितः शब्द के प्रसंग में *तनुवाङ्मनोभिः* शब्द यह सूचित करते हैं कि शुद्ध भक्तगण भगवान् कृष्ण के तन, मन तथा वाणी को जीत लेते हैं। भगवान् कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों के पास रहने के कारण तन से जीत लिए जाते हैं और अपने भक्तों का गुणगान करते रहने से वाणी से तथा अपने प्रिय भक्तों का निरन्तर चिन्तन करने से मन से जीत लिये जाते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *तनुवाङ्मनोभिः* शब्दों की व्याख्या *नमन्तः* के साथ जोड़ते हुए की है। वे बतलाते हैं कि भक्तगण मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् विषयक कथाओं का आदर करते हुए उनका पूरा लाभ उठा सकते हैं। भगवान् की कथाओं को नमस्कार करते समय भक्त को चाहिए कि अपने हाथों तथा सिर से भूमि स्पर्श करते हुए शरीर को सेवा में लगाये। वह *श्रीभद्रभागवत* तथा *भगवद्गीता* जैसे दिव्य ग्रंथों एवं इन ग्रंथों का प्रचार करने वाले भक्तों की प्रशंसा करने में अपनी वाणी को लगाए तथा भगवान् की कथाओं का श्रवण करते समय आदर तथा आनन्द का अनुभव करने में अपने मन को लगाए। इस तरह जिस निष्ठावान भक्त ने कृष्ण विषयक स्वल्प ज्ञान भी प्राप्त कर लिया

है, वह उनको जीत सकता है और उनके पास नित्य जीवन बिताने के लिए भगवद्धाम वापस जा सकता है।

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्रेयः—परम लाभ का; सृतिम्—मार्ग; भक्तिम्—भक्ति; उदस्य—त्याग करके; ते—वे; विभो—हे सर्वशक्तिमान भगवान्;
क्लिश्यन्ति—क्लेश सहन करते हैं; ये—जो; केवल—एकमात्र; बोध—ज्ञान की; लब्धये—प्राप्ति के लिए; तेषाम्—उनके
लिए; असौ—यह; क्लेशलः—झंझट; एव—केवल; शिष्यते—रहती है; न—कुछ नहीं; अन्यत्—दूसरा; यथा—जिस तरह;
स्थूल-तुष—थोथी भूसी; अवघातिनाम्—मारनेवालों के लिए।

हे प्रभु, आत्म-साक्षात्कार का सर्वोत्तम मार्ग तो आपकी ही भक्ति है। यदि कोई इस मार्ग को त्याग करके ज्ञान के अनुशीलन में प्रवृत्त होता है, तो उसे क्लेश उठाना होगा और वांछित फल भी नहीं मिल पाएगा। जिस तरह थोथी भूसी को पीटने से अन्न (गेहूँ) नहीं मिलता उसी तरह जो केवल चिन्तन करता है उसे आत्म-साक्षात्कार नहीं हो पाता। उसके हाथ केवल क्लेश लगता है।

तात्पर्य : परम पुरुष की प्रेमाभक्ति प्रत्येक जीव का सहज तथा नित्य कर्म है। यदि कोई व्यक्ति अपने वैधानिक कर्म को त्यागकर निर्विशेष ज्ञान के माध्यम से तथाकथित प्रकाश की खोज करता है, तो बनावटी प्रक्रिया का अनुसरण करने से मिलने वाले क्लेश के अतिरिक्त कुछ भी उसके हाथ नहीं लगता। कोई मूर्ख थोथी भूसी को कितना ही क्यों न पीटे किन्तु वह उसमें से अन्न नहीं प्राप्त कर सकता। इसी तरह जो व्यक्ति भगवान् की शरण में गये बिना अपने मन को बारम्बार ज्ञान की खोज में लगाता है, वह मूर्ख है क्योंकि ज्ञान का सार तथा लक्ष्य तो भगवान् ही हैं जिस तरह कि कृषि-कर्म के सारे प्रयासों का एकमात्र लक्ष्य अन्न प्राप्त करना है। वैदिक ज्ञान, या यों कहें कि ईश्वरविहीन भौतिक विज्ञान थोथी भूसी के समान है।

कोई तर्क कर सकता है कि योगाभ्यास द्वारा या निर्विशेष ज्ञान के अनुशीलन से मनुष्य को प्रतिष्ठा, धन, योगशक्ति या निर्विशेष मुक्ति का लाभ होता है। किन्तु ये तथाकथित लाभ व्यर्थ हैं क्योंकि इनसे जीव को परमेश्वर की प्रेमाभक्ति करने का वैधानिक पद प्राप्त नहीं हो पाता। अतः ऐसे लाभ क्षणिक होते हैं। जैसाकि *नृसिंहपुराण* में कहा गया है—*पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वक्रीतलभ्येषु वदैव सत्सु/ भक्त्या सुलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यै किमर्थं क्रियते प्रयत्नः*—जब आदि पुरुष सहज ही उपलब्ध

होनेवाली वस्तुओं यथा पत्र, पुष्प, फूल तथा जल से प्राप्त किये जा सकते हैं, तो फिर मुक्ति के लिए अलग से प्रयास करने की क्या आवश्यकता है ?

यद्यपि भगवान् कृष्ण की भक्तिविधि अत्यन्त सरल है किन्तु उदंड बद्धजीवों को भगवान् के समक्ष पूर्णतया विनीत बनने और चौबीसों घण्टे उनकी सेवा में लगे रहने में अत्यधिक कठिनाई होती है। ऐसे पथभ्रष्ट जीव जो ईश्वर की अवज्ञा करके भोग करना चाहते हैं उनके लिए भक्तिभाव अभिशाप है। जब ऐसे उदंड जीव ज्ञान, तप तथा योग जैसे गर्वित प्रयासों से भगवदर्पण से बच निकलना चाहते हैं, तो वे ईश्वर के सशक्त नियमों द्वारा भौतिक जगत में वापस लौटा दिये जाते हैं और भौतिक संसार नामक भवसागर में डुबो दिये जाते हैं।

पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिन-

स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।

विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया

प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

पुरा—भूतकाल में; इह—इस संसार में; भूमन्—हे सर्वशक्तिमान्; बहवः—अनेक; अपि—निस्सन्देह; योगिनः—योगीजन; त्वत्—आपके प्रति; अर्पित—अर्पित; ईहाः—अपने सारे प्रयास; निज-कर्म—अपने नियत कर्तव्यों से; लब्धया—जो प्राप्त किया जाता है; विबुध्य—समझने पर; भक्त्या—भक्ति के द्वारा; एव—निस्सन्देह; कथा-उपनीतया—आपकी कथाओं के श्रवण तथा कीर्तन के माध्यम से अनुशीलित; प्रपेदिरे—समर्पण द्वारा उन्होंने प्राप्त किया; अञ्जः—सरलता से; अच्युत—हे अच्युत; ते—आपका; गतिम्—गन्तव्य; पराम्—परम।

हे सर्वशक्तिमान्, भूतकाल में इस संसार में अनेक योगीजनों ने अपने कर्तव्य निभाते हुए तथा अपने सारे प्रयासों को आपको अर्पित करते हुए भक्तिपद प्राप्त किया है। हे अच्युत, आपके श्रवण तथा कीर्तन द्वारा सम्पन्न ऐसी भक्ति से वे आपको जान पाये और आपकी शरण में जाकर आपके परमधाम को प्राप्त कर सके।

तथापि भूमन्महिमागुणस्य ते

विबोद्धमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।

अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो

ह्यानन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; भूमन्—हे असीम; महिमा—शक्ति; अगुणस्य—भौतिक गुणों से रहित; ते—आपकी; विबोद्धम्—समझने के लिए; अर्हति—समर्थ होता है; अमल—निष्कलंक; अन्तः-आत्मभिः—मन तथा इन्द्रियों से; अविक्रियात्—भौतिक

भेद पर निराश्रित; स्व-अनुभवात्—परमात्मा के अनुभव से; अरूपतः—भौतिक रूपों के प्रति अनुरक्त हुए बिना; हि—निस्सन्देह; अनन्य-बोध्य-आत्मतया—बिना किसी अन्य प्रकाशक के, जैसाकि स्वतः प्रकट; न—नहीं; च—तथा; अन्यथा—नहीं तो।

किन्तु अभक्तगण आपके पूर्ण साकार रूप में आपका अनुभव नहीं कर सकते। फिर भी हृदय के अन्दर आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा वे निर्विशेष ब्रह्म के रूप में आपका अनुभव कर सकते हैं। किन्तु वे ऐसा तभी कर सकते हैं जब वे अपने मन तथा इन्द्रियों को सारी भौतिक उपाधियों तथा इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति से शुद्ध कर लें। केवल इस विधि से ही उन्हें आपका निर्विशेष स्वरूप प्रकट हो सकेगा।

तात्पर्य : परमेश्वर के समस्त दिव्य स्वरूपों को समझ पाना बद्धजीवों के लिए कठिन है। जैसाकि श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध (१.२.११) में पुष्टि हुई है—*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*। ईश्वर के अस्तित्व को क्रमशः निर्विशेष तेज, घट-घट-वासी अन्तर्यामी परमात्मा तथा अपने नित्य धाम में वास करने वाले भगवान् के रूप में समझा जाता है। कृष्ण का अस्तित्व भौतिक गुणों के परे है। इसीलिए यहाँ पर भगवान् को *अगुणस्य* कहा गया है।

योगाभ्यास करने या उच्च दार्शनिक चिन्तन करने पर भी भौतिक गुणों से परे दिव्य अस्तित्व को समझ पाना कठिन है। और ये सारी विधियाँ एक तरह से भगवान् के अनन्त दिव्य गुणों को समझने में व्यर्थ होती हैं। केवल भगवान् के शुद्ध भक्तों की कृपा से या भगवान् की संगति करने से ही ईश्वर के साकार रूप का अनुभव किया जा सकता है—यह वह विधि है, जो शुद्ध कृष्णभावनामृत में जाकर अन्त होती है—यही ज्ञान की अन्तिम तथा चरम सिद्धि है।

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं

हितावतीऋणस्य क ईशिरेऽस्य ।

कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-

भूपांशवः खे मिहिका द्युभासः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गुण-आत्मनः—समस्त उत्तम गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का; ते—आप; अपि—निश्चय ही; गुणान्—गुणों को; विमातुम्—गिनने के लिए; हित-अवतीर्णस्य—जो समस्त जीवों के हित के लिए अवतीर्ण हुआ है; के—कौन; ईशिरे—समर्थ है; अस्य—ब्रह्माण्ड का; कालेन—कालक्रम में; यैः—जिसके द्वारा; वा—अथवा; विमिताः—गिना हुआ; सु-कल्पैः—महान् विज्ञानियों द्वारा; भू-पांशवः—पृथ्वी लोक के परमाणु; खे—आकाश में; मिहिकाः—बर्फ के कण; द्यु-भासः—तारों तथा ग्रहों का प्रकाश।

समय के साथ, विद्वान दार्शनिक या विज्ञानी, पृथ्वी के सारे परमाणु, हिम के कण या

शायद सूर्य, नक्षत्र तथा ग्रहों से निकलने वाले ज्योति कणों की भी गणना करने में समर्थ हो सकते हैं किन्तु इन विद्वानों में ऐसा कौन है, जो आप में अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर में निहित असीम दिव्य गुणों का आकलन कर सके। ऐसे भगवान् समस्त जीवात्माओं के कल्याण के लिए इस धरती पर अवतरित हुए हैं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण गुणात्मा हैं क्योंकि वे गुणों को जीवन्त करते हैं। उदाहरणार्थ, उदारता, बुद्धि तथा दया जैसे गुणों की विवेचना तो की जा सकती है किन्तु वे सजीव तभी होते हैं जब कोई सजीव व्यक्ति उन्हें प्रकट करता है। अतः कृष्ण गुणात्मा हैं क्योंकि वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और अपने ईश्वरीय गुणों को प्रकट करके तथा अन्यो में उनकी प्रेरणा देकर धर्म की पुनः स्थापना करते हैं। जो जीव भगवान् में प्राप्य दिव्य गुणों को विकसित करता है उसे असीम लाभ प्राप्त होता है और अन्ततः वह भगवद्धाम जाता है जहाँ जाने पर सारे जीव मुक्त हो जाते हैं और दिव्य स्वभाव को प्राप्त होते हैं।

श्रील सनातन गोस्वामी आगे यह भी बतलाते हैं कि भगवान् हर जीव के लाभ हेतु एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण प्रदर्शित करते हैं। चूँकि इस सृष्टि में असंख्य जीव हैं अतएव भगवान् अनन्त गुण प्रकट करते हैं। इस तरह प्रत्येक बद्धजीव भगवान् को विशिष्ट रूप से जान सकता है।

यहाँ पर उदाहरण दिया गया है कि भले ही सबसे विद्वान पंडितगण पृथ्वी, हिम तथा प्रकाश के कणों की गणना कर लें किन्तु तो भी वे भगवान् के गुणों को समझ नहीं पाएंगे। इस उदाहरण में पृथ्वी, हिम तथा प्रकाश उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते जाते हैं अतएव उनके अनन्त कणों की गणना कर सकना एक प्रकार से बहुत ही कठिन है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् संकर्षण जैसे महापुरुषों ने पृथ्वी के ही नहीं अपितु सारे ब्रह्माण्ड भर के परमाणुओं की संख्या की गणना की है। फिर भी संकर्षण जैसे व्यक्ति जो कि अनादि काल से भगवान् की महिमा का निरन्तर गुणगान करते आ रहे हैं उन गुणों की गणना के अन्तिम दौर में भी नहीं पहुँच पाये।

भगवान् कृष्ण वृन्दावन में अपनी बाललीलाओं के समय आश्चर्यजनक गुण प्रदर्शित करते हैं—वहाँ वे गोपिकाओं का माखन चुराते हैं, अपनी सखियों के साथ नाचते हैं और अपने प्रिय संगी ग्वालबालों

के साथ उनके सर्वाधिक प्रिय सखा के रूप में क्रीड़ा करते हैं। यद्यपि ये सामान्य मानवी क्रीड़ाएँ प्रतीत होती हैं किन्तु इन दिव्य लीलाओं में कृष्ण के असंख्य सुन्दर गुण निहित रहते हैं, जो शुद्ध भक्तों के जीवनाधार हैं।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो

भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते

जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतः; ते—आपकी; अनुकम्पाम्—दया की; सु-समीक्षमाणः—आशा रखते हुए; भुञ्जानः—सहन करते हुए; एव—निश्चय ही; आत्म-कृतम्—अपने से किया गया; विपाकम्—कर्म फल; हृत्—हृदय; वाक्—वाणी; वपुर्भिः—तथा शरीर से; विदधन्—अर्पित करते हुए; नमः—नमस्कार; ते—आपको; जीवेत—जीवित रहता है; यः—जो; मुक्ति-पदे—मुक्ति पद के लिए; सः—वह; दाय-भाक्—असली उत्तराधिकारी।

हे प्रभु, जो व्यक्ति अपने विगत दुष्कर्मों के फलों को धैर्यपूर्वक सहते हुए तथा अपने मन, वाणी तथा शरीर से आपको नमस्कार करते हुए सत्यनिष्ठा से आपकी अहैतुकी कृपा प्रदत्त किये जाने की प्रतीक्षा करता है, वह अवश्य ही मोक्ष का भागी होता है क्योंकि यह उसका अधिकार बन जाता है।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी टीका करते हुए बतलाते हैं कि जिस प्रकार वैध पुत्र को पिता का उत्तराधिकारी बनने के लिए केवल जीवित रहना होता है उसी तरह जो व्यक्ति भक्तियोग के नियमों का पालन करते हुए कृष्णभावनामृत को अपना प्राणाधार बनाता है उसे भगवत्कृपा प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, वह भगवद्धाम को जाता है।

सुसमीक्षमाण शब्द सूचित करता है कि भक्त अपने पूर्व पापकृत्यों के कष्टकारक फलों का भोग करते हुए भी भगवान् की कृपा की प्रतीक्षा करता है। भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* में कहा है कि जो भक्त उनकी शरण में चला जाता है उसे पूर्वकर्म का फल नहीं भोगना पड़ता। फिर भी चूँकि भक्त के मन में अपनी पूर्वपाप मनोवृत्ति के अवशेष रह सकते हैं अतः भगवान् कभी कभी अपने भक्त को दण्ड देते प्रतीत होते हैं, जो पाप के फलों जैसा हो सकता है। ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि का उद्देश्य जीव की उस प्रवृत्ति को सुधारना है, जिसमें वह ईश्वर के बिना भोग करना चाहता है, अतः किसी पापकर्म के लिए विशेष दण्ड दिया जाना उस मनोवृत्ति को कम करने के लिए होता है, जिससे वह कर्म हुआ होता है।

यद्यपि भक्त भगवान् की भक्ति के अधीन रहता है किन्तु जब तक वह कृष्णभावनामृत में पूरी तरह दक्ष नहीं हो लेता तब तक उसमें इस जगत के मिथ्या सुख को भोगने की थोड़ी थोड़ी प्रवृत्ति रह जाती है। इसलिए भगवान् इस बची हुई भोग-प्रवृत्ति को समूल नष्ट करने के लिए विशिष्ट स्थिति उत्पन्न करते हैं। निष्ठावान् भक्त द्वारा भोगा जाने वाला दुख कर्मफल नहीं है प्रत्युत यह भगवान् की विशिष्ट कृपा होती है कि वे उसे भौतिक जगत छोड़कर भगवद्धाम वापस जाने की प्रेरणा देते हैं।

निष्ठावान् भक्त भगवद्धाम जाने के लिए इच्छुक रहता है, इसलिए वह खुशी खुशी भगवान् के दयापूर्ण दण्ड को स्वीकार करता है और वह मन, वचन तथा कर्म से भगवान् को आदर देता है तथा नमस्कार करता है। भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए भगवान् का ऐसा प्रामाणिक दास ईश्वर का वैध पुत्र बन जाता है जैसाकि *दायभाक्* शब्दों से सूचित होता है। जिस प्रकार स्वयं अग्नि बने बिना कोई भी व्यक्ति सूर्य के पास नहीं पहुँच सकता उसी तरह कठोर शुद्धीकरण विधि का पालन किए बिना कोई परम पवित्र कृष्ण तक नहीं पहुँच सकता—यह शुद्धीकरण भले ही कष्ट जैसा प्रतीत हो किन्तु यह भगवान् के हाथों द्वारा किया गया उपचार होता है।

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये

परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।

मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं

ह्यहं कियानैच्छमिवाचिरग्नौ ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

पश्य—जरा देखें तो; ईश—हे प्रभु; मे—मेरा; अनार्यम्—निन्दनीय आचरण; अनन्ते—अनन्त के विरुद्ध; आद्ये—आदि; पर-आत्मनि—परमात्मा; त्वयि—तुम; अपि—भी; मायि-मायिनि—माया के स्वामियों के लिए; मायाम्—(मेरी) माया; वितत्य—विस्तृत होकर; ईक्षितुम्—देखने के लिए; आत्म—आपकी; वैभवम्—शक्ति को; हि—निस्सन्देह; अहम्—मैं; कियान्—कितनी; ऐच्छम्—मैंने इच्छा की; इव—सदृश; अचिः—चिनगारी; अग्नौ—अग्नि की तुलना में।

हे प्रभु, मेरी अशिष्टता को जरा देखें! आपकी शक्ति की परीक्षा करने के लिए मैंने अपनी मायामयी शक्ति से आपको आच्छादित करने का प्रयत्न किया जबकि आप असीम तथा आदि परमात्मा हैं, जो मायापतियों को भी मोहित करनेवाले हैं। आपके सामने भला मैं क्या हूँ? विशाल अग्नि की उपस्थिति में मैं छोटी चिनगारी की तरह हूँ।

तात्पर्य : विशाल अग्नि से अनेक चिनगारियाँ निकलती हैं, जो उसकी तुलना में नगण्य होती हैं। यदि एक छोटी चिनगारी मूल अग्नि को जलाने का प्रयास करे तो यह प्रयास उपहासात्मक होगा। इसी

प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्मा भी ईश्वर की शक्ति की नगण्य चिनगारी हैं इसलिए ब्रह्मा द्वारा परमेश्वर को मोहित करने का प्रयास निश्चित रूप से हास्यास्पद था।

ब्रह्मा यहाँ पर भगवान् कृष्ण को ईश कहकर सम्बोधित करते हैं, जो यह सूचित करता है कि कृष्ण न केवल सबों के स्वामी हैं अपितु भगवान् के निर्देशन में ब्रह्माण्ड का सृजन करनेवाले उन ब्रह्मा के भी स्वामी हैं, जो भगवान् के ही शरीर से उत्पन्न हैं।

भगवान् कृष्ण को छलने के प्रयास के कारण ब्रह्मा को अपनी अशिष्टता पर लज्जा आई अतएव वे उनके द्वारा दण्डित होने या क्षमा किये जाने के लिए पूर्णतया राजी थे। यदि भगवान् कृष्ण अपने भक्तों को अनुचित कार्य करने पर दण्ड नहीं दें तो उनकी मूर्खता बढ़ती जाये और वह उनके भक्ति-भावों को पूर्णतया आच्छादित कर ले। इसलिए भगवान् कृष्ण कृपा करके अपने भक्तों को अनुशासित रखते हैं और उन्हें भगवद्भ्राम के मार्ग की ओर अग्रसर होने देते हैं।

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो

ह्यजानतस्त्वत्पृथग्गीशमानिनः ।

अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष

एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अतः—अतएव; क्षमस्व—कृपया क्षमा कर दें; अच्युत—हे अच्युत प्रभु; मे—मुझको; रजः-भुवः—रजोगुण में उत्पन्न; हि—निस्सन्देह; अजानतः—अज्ञान होने से; त्वत्—आपसे; पृथक्—भिन्न; ईश—नियन्ता; मानिनः—अपने को मानते हुए; अज—अजन्मा; अवलेप—आवरण; अन्ध-तमः—अज्ञान के ऐसे अंधकार से; अन्ध—अन्धी; चक्षुषः—मेरी आँखें; एषः—यह व्यक्ति; अनुकम्प्यः—दया दिखानी चाहिए; मयि—मुझ पर; नाथ-वान्—अपने स्वामी के रूप में पाकर; इति—ऐसा सोचते हुए।

अतएव हे अच्युत भगवान्, मेरे अपराधों को क्षमा कर दें। मैं रजोगुण से उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं को आपसे पृथक् (स्वतंत्र) नियन्ता मानने के कारण मैं निरा मूर्ख हूँ। अज्ञान के अंधकार से मेरी आँखें अंधी हो चुकी हैं जिसके कारण मैं अपने को ब्रह्माण्ड का अजन्मा स्रष्टा समझ रहा हूँ। किन्तु मुझे आप अपना सेवक मानें और अपनी दया का पात्र बना लें।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अपनी टीका में बतलाया है कि ब्रह्मा भगवान् के समक्ष निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करना चाह रहे थे: “हे प्रभु! चूँकि मैंने बहुत बुरा कर्म किया है इसलिए मैं दण्ड का पात्र हूँ। साथ ही चूँकि मैं इतना बड़ा अज्ञानी हूँ इसलिए आप मुझे अबोध मूर्ख मानकर मुझ पर कृपा कीजिये। इस तरह यद्यपि मैं दण्ड तथा क्षमा दोनों का पात्र हूँ किन्तु मेरी विनम्र

याचना है कि आप इस विषय में सहिष्णुता बरतते हुए मुझे क्षमा कर दें और मुझ पर कृपा करें।”

नाथवान् इति शब्दों के द्वारा ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण को जताना चाह रहे थे कि आखिर वे उनके पिता और स्वामी हैं अतएव वे अपने इस विनीत सेवक के अपराध को क्षमा कर दें। प्रत्येक बद्धजीव, चाहे वह ब्रह्मा हो या क्षुद्र चींटी, अपनी पहचान भौतिक जगत से बनाना चाहता है और इस तरह भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूल जाता है। ब्रह्माजी भी इस विराट जगत के स्रष्टा के प्रतिष्ठित पद पर होने के कारण अपनी पहचान इस जगत के स्वामी के रूप में करते हैं और कभी कभी वे भूल जाते हैं कि वे परमेश्वर के तुच्छ सेवक हैं। अब भगवान् कृष्ण की कृपा से यह मिथ्या पहचान सही की जा रही है और ब्रह्माजी ईश्वर के नित्यदास के रूप में अपनी स्थिति का स्मरण कर रहे हैं।

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भू-

संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।

क्वेद्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-

वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ; अहम्—मैं; तमः—भौतिक प्रकृति; महत्—सम्पूर्ण भौतिक शक्ति; अहम्—मिथ्या अहंकार; ख—आकाश; चर—वायु; अग्नि—आग; वाः—जल; भू—पृथ्वी; संवेष्टित—घिरा हुआ; अण्ड-घट—घड़े के सदृश ब्रह्माण्ड; सप्त-वितस्ति—सात बालिशत; कायः—शरीर; क्व—कहाँ; ईद्वक्—इसके; विधा—सदृश; अविगणित—असीम; अण्ड—ब्रह्माण्ड; पर-अणु—परमाणु की धूल सदृश; चर्या—चलायमान; वात-अध्व—वायु के छेद; रोम—शरीर के रोमों के; विवरस्य—छेदों के; च—भी; ते—आपकी; महित्वम्—महानता ।

कहाँ मैं अपने हाथ के सात बालिशतों के बराबर एक क्षुद्र प्राणी जो भौतिक प्रकृति, समग्र भौतिक शक्ति, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, जल तथा पृथ्वी से बने घड़े-जैसे ब्रह्माण्ड से घिरा हुआ हूँ! और कहाँ आपकी महिमा! आपके शरीर के रोमकूपों से होकर असंख्य ब्रह्माण्ड उसी प्रकार आ-जा रहे हैं जिस तरह खिड़की की जाली के छेदों से धूल कण आते-जाते रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने चैतन्य-चरितामृत (आदि लीला ५.७२) में इस श्लोक का सारांश इस प्रकार दिया है, “कृष्ण की गौवों तथा ग्वालमित्रों को चुराने के बाद जब ब्रह्माजी लौटे तो देखा कि गौवें तथा ग्वालबाल अब भी कृष्ण के साथ टहल रहे हैं, तो उन्होंने अपनी पराजय में यह स्तुति की। बद्धजीव, यहाँ तक कि समग्र ब्रह्माण्ड के कामकाज चलाने वाले ब्रह्माजी भी भगवान् की बराबरी नहीं

कर सकते क्योंकि भगवान् अपने शरीर के रोमछिद्रों से निकलने वाली आध्यात्मिक किरणों से असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि कर सकते हैं। भौतिक विज्ञानियों को ब्रह्माजी के इन शब्दों से ईश्वर के समक्ष अपनी नगण्यता के विषय में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ब्रह्माजी की इन स्तुतियों में उन लोगों के लिए बहुत कुछ सीखने को है, जो शक्ति के संचय से गर्वित हो उठे हैं।”

श्रील प्रभुपाद “भगवान् श्रीकृष्ण” (भाग १, अध्याय १४) में इस श्लोक की टीका करते हुए आगे कहते हैं, “ब्रह्माजी को अपनी असली स्थिति का अनुभव हुआ। निश्चित ही वे इस ब्रह्माण्ड के परम गुरु हैं और भौतिक ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए उत्तरदायी हैं, जो पूर्ण भौतिक तत्त्वों, मिथ्या अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी से बना हुआ है। भले ही ऐसा ब्रह्माण्ड विशाल हो किन्तु उसे मापा जा सकता है, जिस तरह हम शरीर को सात बालिशतों में मापते हैं। सामान्यतः हरेक के अपने शरीर की आप उसके अपने हाथों के साथ यह ब्रह्माण्ड भले ही विशाल शरीर प्रतीत हो किन्तु यह ब्रह्माजी के सात बालिशतों के बराबर है।”

इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त अन्य असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, जो इन ब्रह्माजी के अधिकार-क्षेत्र के बाहर हैं। जिस प्रकार खिड़की की जाली के छेदों से होकर असंख्य सूक्ष्म कण गुजरते रहते हैं उसी तरह महाविष्णु के रोमछिद्रों से करोड़ों ब्रह्माण्ड बीज रूप में निकलते रहते हैं और स्वयं महाविष्णु भगवान् कृष्ण के स्वांश मात्र हैं। ऐसी दशा में यद्यपि ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड में सबसे बड़े प्राणी हैं किन्तु कृष्ण के समक्ष उनकी महत्ता ही क्या है ?

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः

किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।

किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं

तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

उत्क्षेपणम्—लात मारना; गर्भ-गतस्य—गर्भस्थ शिशु; पादयोः—दोनों पाँवों का; किम्—क्या; कल्पते—मूल्य है; मातुः—माता के लिए; अधोक्षज—हे दिव्य प्रभु; आगसे—अपराध के रूप में; किम्—क्या; अस्ति—है; न अस्ति—नहीं है; व्यपदेश—उपाधि से; भूषितम्—अलंकृत; तव—आपका; अस्ति—है; कुक्षेः—उदर के; कियत्—कितना; अपि—भी; अनन्तः—बाह्य।

हे प्रभु अधोक्षज, क्या कोई माता अपने गर्भ के भीतर स्थित शिशु द्वारा लात मारे जाने को अपराध समझती है? क्या आपके उदर के बाहर वास्तव में ऐसी किसी वस्तु का अस्तित्व है,

जिसे दार्शनिक जन “है” या “नहीं है” की उपाधि प्रदान कर सकें ?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने “भगवान् श्रीकृष्ण” (भाग १ अध्याय १४) में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है, “अतः ब्रह्मा ने अपनी बराबरी किसी माता के गर्भ में स्थित एक शिशु से की। यदि शिशु गर्भ के भीतर हाथ-पैर चलाता है और वे माता के शरीर से छू जाते हैं, तो क्या माता इस शिशु से रूष्ट होती है ? निस्सन्देह नहीं। इसी तरह ब्रह्मा भले ही महान् पुरुष हों किन्तु न केवल ब्रह्मा अपितु हर वस्तु भगवान् के उदर में स्थित है। भगवान् की शक्ति सर्वव्यापक है। सृष्टि में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ यह शक्ति क्रियाशील न हो। सारी वस्तुएँ भगवान् की शक्ति के ही अन्तर्गत विद्यमान हैं अतः इस ब्रह्माण्ड के ब्रह्माजी अथवा अन्य करोड़ों ब्रह्माण्डों के ब्रह्मा भी भगवान् की शक्ति के अन्तर्गत स्थित हैं। इसीलिए भगवान् को माता माना जाता है और माता के गर्भ के भीतर स्थित प्रत्येक वस्तु शिशु मानी जाती है। अच्छी माता कभी भी शिशु का अपराध नहीं मानती भले ही वह अपने पाँवों से माता के शरीर पर पाद-प्रहार क्यों न करे।”

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे

नारायणस्योदरनाभिनालात् ।

विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ्म वै मृषा

किन्त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जगत्-त्रय—तीनों लोकों की; अन्त—विजय में; उदधि—सारे समुद्रों में; सम्प्लव—पूर्ण आप्लावन का; उदे—जल में; नारायणस्य—भगवान् नारायण के; उदर—उदर से उग कर; नाभि—नाभि; नालात्—कमल के डंठल से; विनिर्गतः—बाहर निकले; अजः—ब्रह्मा; तु—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार कहते हुए; वाक्—शब्द; न—नहीं हैं; वै—निश्चय ही; मृषा—झूठा; किन्तु—इस प्रकार; ईश्वर—हे ईश्वर; त्वत्—आपसे; न—नहीं; विनिर्गतः—विशेष रूप से निकला; अस्मि—मैं हूँ।

हे प्रभु, ऐसा कहा जाता है कि जब प्रलय के समय तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं, तो आपके अंश, नारायण, जल में लेट जाते हैं, उनकी नाभि से धीरे-धीरे एक कमल का फूल निकलता है और उस फूल से ब्रह्मा का जन्म होता है। अवश्य ही ये वचन झूठे नहीं हैं। तो क्या मैं आपसे उत्पन्न नहीं हूँ ?

तात्पर्य : यद्यपि सारे जीव ईश्वर की सन्तान हैं किन्तु ब्रह्माजी यहाँ पर विशेष दावा करते हैं क्योंकि उनका जन्म भगवान् नारायण की नाभि से निकले कमल के फूल से हुआ है। अन्ततोगत्वा सारे जीव भगवान् के दिव्य शरीर के एक अंश हैं। लेकिन ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने से ब्रह्माजी का उनसे घनिष्ठ

सम्बन्ध है इसीलिए वे भगवान् की विशेष दया की याचना करते हुए *विनिर्गत* शब्द के साथ *वि* उपसर्ग लगाते हैं। ब्रह्माजी *अज* कहलाते हैं क्योंकि वे किसी माता से उत्पन्न न होकर सीधे भगवान् के शरीर से उत्पन्न हुए हैं। जैसाकि श्रील प्रभुपाद ने “भगवान् श्रीकृष्ण” में लिखा है, “इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नारायण ही ब्रह्मा की माता हैं।” इन्हीं कारणों से ब्रह्माजी अपने अपराधों के लिए विशेष क्षमायाचना करते हैं।

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-

मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी ।

नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना-

तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

नारायणः— भगवान् नारायण; त्वम्—तुम; न—नहीं; हि—क्या; सर्व—सभी; देहिनाम्—देहधारी जीवों के; आत्मा—परमात्मा; असि—हो; अधीश—हे परम नियन्ता; अखिल—सम्पूर्ण; लोक—लोकों के; साक्षी—गवाह; नारायणः—श्री नारायण; अङ्गम्—अंश; नर—भगवान् से; भू—निकलकर; जल—जल के; अयनात्—प्रकट करने वाले स्रोत होने से; तत्—वह अंश; च—तथा; अपि—निस्सन्देह; सत्यम्—सच; न—नहीं; तव—तुम्हारा; एव—तनिक भी; माया—मोहक शक्ति।

हे परम नियन्ता, प्रत्येक देहधारी जीव के आत्मा तथा समस्त लोकों के शाश्वत साक्षी होने के कारण क्या आप आदि नारायण नहीं हैं? निस्सन्देह, भगवान् नारायण आपके ही अंश हैं और वे नारायण इसलिए कहलाते हैं क्योंकि ब्रह्माण्ड के आदि जल के जनक हैं। वे सत्य हैं, आपकी माया से उत्पन्न नहीं हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *चैतन्य-चरितामृत* (आदि लीला, २.३०) में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है “यह ब्रह्मा का कथन है जब वे भगवान् कृष्ण द्वारा योगशक्ति प्रकट किये जाने पर पराजित होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। ब्रह्मा ने यह देखने के लिए भगवान् कृष्ण की परीक्षा लेनी चाही थी कि ग्वाल-बाल के रूप में खेलनेवाले कृष्ण सचमुच भगवान् ही हैं। ब्रह्मा ने अन्य सारे बालकों तथा उनकी गौवों को चरागाह से चुरा लिया किन्तु जब वे लौटे तो देखा कि सारे बालक तथा गौवें चरागाह में ही थे क्योंकि भगवान् ने फिर से उनकी सृष्टि कर दी थी। जब ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण की इस योगशक्ति को देखा तो उन्होंने हार मान ली और भगवान् को अपना स्वामी तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का द्रष्टा एवं समस्त जीवों के भीतर स्थित परमात्मा के रूप में सम्बोधित करते हुए उनकी स्तुति की। भगवान् कृष्ण नारायण हैं अर्थात् ब्रह्मा के पिता हैं क्योंकि कृष्ण के अंश रूप गर्भोदकशायी

विष्णु ने गर्भोदक में शयन करते हुए ब्रह्मा को अपने शरीर से उत्पन्न किया था। कारणार्णव में महाविष्णु और सबों के हृदय में वास करनेवाले परमात्मा स्वरूप क्षीरोदकशायी विष्णु भी परम सत्य के अंश हैं।”

श्रील सनातन गोस्वामी ने इस श्लोक की टीका करते हुए भगवान् के आदि स्वरूप श्रीकृष्ण के अवतार विष्णु या नारायण के अंश की विस्तृत व्याख्या की है। इसका सार यह है कि यद्यपि ब्रह्माजी नारायण से उत्पन्न हुए थे किन्तु अब ब्रह्मा समझ रहे हैं कि नारायण तो आदि भगवान् श्रीकृष्ण के ही अंश हैं।

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः

किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।

किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव

किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; चेत्—यदि; जल-स्थम्—जल में स्थित था; तव—तुम्हारा; सत्—असली; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आश्रय देते हुए; वपुः—दिव्य शरीर; किम्—क्यों; मे—मेरे द्वारा; न दृष्टम्—नहीं देखा गया; भगवन्—हे भगवन्; तदा एव—उसी समय; किम्—क्यों; वा—अथवा; सु-दृष्टम्—भलीभाँति देखा हुआ; हृदि—हृदय में; मे—मेरे द्वारा; तदा एव—तभी ही; किम्—क्यों; न—नहीं; उ—दूसरी ओर; सपदि—अचानक; एव—निस्सन्देह; पुनः—फिर; व्यदर्शि—देखा गया।

हे प्रभु, यदि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को शरण देने वाला आपका यह दिव्य शरीर वास्तव में जल में शयन करता है, तो फिर आप मुझे तब क्यों नहीं दिखे जब मैं आपको खोज रहा था? और तब क्यों आप सहसा प्रकट नहीं हो गये थे यद्यपि मैं अपने हृदय में आपको ठीक से देख नहीं पाया था।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्रह्माजी विराट सृष्टि के प्रारम्भ के अपने अनुभव का उल्लेख कर रहे हैं। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कन्ध में कहा गया है कि ब्रह्मा का जन्म उस विशाल कमलासन से हुआ जिसकी नाल नारायण की नाभि से निकली थी। ब्रह्मा अपने विषय में, अपने कार्य तथा अपनी पहचान के बारे में मोहित थे अतएव सही जानकारी पाने के उद्देश्य से वे कमलनाल के उद्गम का पता लगाना चाह रहे थे। भगवान् को न पाकर ब्रह्मा अपने आसन पर लौट आये और अदृश्य किन्तु दिव्य भगवद्वाणी द्वारा आदेश दिये जाने पर घोर तपस्या में लग गये। दीर्घ ध्यान के बाद ब्रह्मा ने भगवान् को देखा किन्तु वे तुरन्त ही ओझल हो गये। इस तरह ब्रह्मा ने निष्कर्ष निकाला कि भगवान् का दिव्य शरीर

भौतिक नहीं अपितु अचिन्त्य योगशक्तियों से ओतप्रोत नित्य आध्यात्मिक स्वरूप है। दूसरे शब्दों में, ब्रह्मा ने समस्त योगशक्ति के स्वामी भगवान् को ललकार कर अच्छा नहीं किया।

अत्रैव मायाधमनावतारे

ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।

कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या

मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इसी; एव—ही; माया—धमन—हे माया को वश में करने वाले; अवतारे—अवतार में; हि—निश्चय ही; अस्य—इस; प्रपञ्चस्य—सृजित जगत का; बहिः—बाहर से; स्फुटस्य—दृश्य; कृत्स्नस्य—सम्पूर्ण; च—तथा; अन्तः—भीतर; जठरे—आपके उदर में; जनन्याः—आपकी माता के; मायात्वम्—आपकी मायावी शक्ति; एव—निस्सन्देह; प्रकटी-कृतम्—प्रकट की जा चुकी है; ते—आपके द्वारा।

हे प्रभु, आपने इसी अवतार में यह सिद्ध कर दिया है कि आप माया के परम नियंत्रक हैं। यद्यपि आप अब इस ब्रह्माण्ड के भीतर हैं किन्तु सारा ब्रह्माण्ड आपके दिव्य शरीर के भीतर है—आपने इस तथ्य को माता यशोदा के समक्ष अपने उदर के भीतर ब्रह्माण्ड दिखलाकर प्रदर्शित कर दिया है।

तात्पर्य : यहाँ पर ब्रह्माजी भगवान् की अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन कर रहे हैं। हम घर के भीतर घट को तो देखते हैं किन्तु इसी घट के भीतर घर के होने की अपेक्षा नहीं करते। किन्तु भगवान् इस ब्रह्माण्ड के भीतर प्रकट होकर अपने शरीर के भीतर समस्त ब्रह्माण्डों को प्रदर्शित कर सकते हैं। कोई यह तर्क कर सकता है कि चूँकि माता यशोदा ने भगवान् कृष्ण के उदर के भीतर जो ब्रह्माण्ड देखे थे वे उनके शरीर के भीतर ही थे अतएव वे बाह्य रूप से प्रकट मायामय भौतिक ब्रह्माण्डों से भिन्न हैं। किन्तु ब्रह्माजी उस तर्क का निराकरण करते हैं। भगवान् कृष्ण *मायाधमन* हैं—माया के परम नियन्ता हैं। भगवान् अपनी परम योगशक्ति से साक्षात् माया को मोहित कर सकते हैं। इस तरह भगवान् ने अपने शरीर के भीतर सचमुच ही सारे भौतिक ब्रह्माण्डों को प्रदर्शित किया। यह *मायात्वम्* है—भगवान् की चकित कर देने वाली परम शक्ति।

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।

तत्त्वव्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; कुक्षौ—उदर में; इदम्—यह विराट जगत; सर्वम्—सारा; स-आत्मम्—अपने समेत; भाति—प्रकट किया जाता है; यथा—जिस तरह; तथा—उसी तरह; तत्—वह; त्वयि—तुम में; अपि—यद्यपि; इह—बाह्य रूप से यहाँ; तत्—वह विराट जगत; सर्वम्—सम्पूर्ण; किम्—क्या; इदम्—यह; मायया—आपकी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव के; विना—बिना।

जिस तरह आप समेत यह सारा ब्रह्माण्ड आपके उदर में प्रदर्शित किया गया था उसी तरह अब यह उसी रूप में यहाँ पर प्रकट हुआ है। आपकी अचिन्त्य शक्ति की व्यवस्था के बिना भला ऐसा कैसे घटित हो सकता है?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने “ भगवान् श्रीकृष्ण ” में इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है, “ इसमें ब्रह्मा ने बल दिया है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को स्वीकार किये बिना वस्तुओं की, वे जिस रूप में हैं, व्याख्या नहीं की जा सकती। ”

अद्यैव त्वद्वृत्तेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-

मेकोऽसि प्रथमं ततो ब्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ।

तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-

स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; एव—ही; त्वत् ऋते—आपसे पृथक्; अस्य—इस ब्रह्माण्ड का; किम्—क्या; मम—मुझको; न—नहीं; ते—आपके द्वारा; मायात्वम्—आपकी अचिन्त्य शक्ति का आधार; आदर्शितम्—दिखलाया हुआ; एकः—अकेले; असि—हो; प्रथमम्—सर्वप्रथम; ततः—तब; ब्रज-सुहृत्—आपके वृन्दावन के ग्वालबाल मित्र; वत्साः—तथा बछड़े; समस्ताः—सारे; अपि—भी; तान्तः—उतने ही; असि—हो गये; चतुः-भुजाः—भगवान् विष्णु की चार भुजाएँ; तत्—तब; अखिलैः—सबों के द्वारा; साकम्—साथ; मया—मेरे द्वारा; उपासिताः—पूजित होकर; तान्ति—उतनी ही संख्या के; एव—भी; जगन्ति—ब्रह्माण्ड; अभूः—बन गये; तत्—तब; अमितम्—असंख्य; ब्रह्म—परम सत्य; अद्वयम्—अद्वितीय; शिष्यते—अब आप शेष हैं।

क्या आपने आज मुझे यह नहीं दिखलाया कि आप स्वयं तथा इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु आपकी अचिन्त्य शक्ति के ही प्राकट्य हैं? सर्वप्रथम आप अकेले प्रकट हुए, तत्पश्चात् आप वृन्दावन के बछड़ों तथा अपने मित्र ग्वालबालों के रूप में प्रकट हुए। इसके बाद आप उतने ही चतुर्भुजी विष्णु रूपों में प्रकट हुए जो मुझ समेत समस्त जीवों द्वारा पूजे जा रहे थे। तत्पश्चात् आप उतने ही संपूर्ण ब्रह्माण्डों के रूप में प्रकट हुए। तदनन्तर आप अद्वितीय परम ब्रह्म के अपने अनन्त रूप में वापस आ गये हैं।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय में कहा गया है—*सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—सारी विद्यमान वस्तुएँ भगवान् के अंश हैं। इस तरह प्रत्येक वस्तु भगवान् का अंश है। भगवान् कृष्ण की अहैतुकी कृपा से ब्रह्मा ने स्वयं अनुभव किया कि सारा जगत ईश्वर की शक्ति होने के कारण उनसे अभिन्न है।

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-
 न्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् ।
 सृष्टाविवाहं जगतो विधान
 इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अजानताम्—अज्ञान में रहनेवाले मनुष्यों के लिए; त्वत्-पदवीम्—आपके दिव्य पद का; अनात्मनि—भौतिक शक्ति में;
 आत्मा—स्वयं; आत्मना—स्वयं से; भासि—प्रकट होते हो; वितत्य—विस्तार करके; मायाम्—अपनी अचिन्त्य शक्ति को;
 सृष्टौ—सृष्टि के बारे में; इव—मानो; अहम्—मैं, ब्रह्मा; जगतः—ब्रह्माण्ड के; विधाने—पालन पोषण में; इव—मानो; त्वम्
 एषः—आप ही; अन्ते—संहार में; इव—मानो; त्रि-नेत्रः—शिवजी ।

आपकी वास्तविक दिव्य स्थिति से अपरिचित व्यक्तियों के लिए आप इस जगत के अंश रूप में अपने को अपनी अचिन्त्य शक्ति के अंश द्वारा प्रकट करते हुए अवतरित होते हैं। इस तरह ब्रह्माण्ड के सृजन के लिए आप मेरे (ब्रह्मा) रूप में, इसके पालन के लिए अपने ही (विष्णु) रूप में तथा इसके संहार के लिए आप त्रिनेत्र (शिव) के रूप में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि निर्विशेष मायावादी दार्शनिक यह सोचते हैं कि देवतागण माया हैं किन्तु ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु को यहाँ पर भगवान् का अंश कहा गया है फलतः वे सत्य हैं। वे ब्रह्माण्ड के अद्वितीय शक्तिशाली नियंत्रक हैं। परम सत्य सर्वोच्च एवं सुन्दर पुरुष है इसलिए ईश्वर की सृष्टि में हमें साकारता का आभास होता है।

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
 तिर्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य ।
 जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
 प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सुरेषु—देवताओं में से; ऋषिषु—ऋषियों में; ईश—हे प्रभु; तथा—और; एव—निस्सन्देह; नृषु—मनुष्यों में; अपि—तथा;
 तिर्यक्षु—पशुओं में; यादःसु—जलचरों में; अपि—भी; ते—आपका; अजनस्य—अजन्मा; जन्म—जन्म; असताम्—अभक्तों
 का; दुर्मद—मिथ्या अहंकार; निग्रहाय—दमन करने के लिए; प्रभो—हे स्रष्टा; विधातः—हे स्रष्टा; सत्—आज्ञाकारी भक्तों पर;
 अनुग्रहाय—अनुग्रह दिखाने के लिए; च—तथा ।

हे प्रभु, हे परम स्रष्टा एवं स्वामी, यद्यपि आप अजन्मा हैं किन्तु श्रद्धाविहीन असुरों के मिथ्या गर्व को चूर करने तथा अपने सन्त-सदृश भक्तों पर दया दिखाने के लिए आप देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों, पशुओं तथा जलचरों तक के बीच में जन्म लेते हैं।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण देवताओं के बीच वामनदेव के रूप में, ऋषियों में परशुराम, मनुष्यों में

साक्षात् कृष्ण तथा रामचन्द्र के रूप में और पशुओं में वराह के रूप में अवतरित होते हैं। वे जलचरों के मध्य मत्स्य रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् के मूल विस्तार असंख्य हैं क्योंकि वे इस ब्रह्माण्ड में नास्तिकों के मिथ्या दर्प को चूर करने तथा सन्त सदृश भक्तों पर दया दिखाने के लिए दयार्द्र होकर अवतरित होते हैं। दूसरे शब्दों में, चूँकि भगवान् शाश्वत रूप से विद्यमान हैं अतएव वे कभी प्रकट नहीं होते। उनका प्राकट्य सूर्य के समान है, जो आकाश में सदैव रहता है किन्तु वह हमें कभी कभी दृष्टिगोचर होता है।

को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवत्स्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; वेत्ति—जानता है; भूमन्—हे विराट; भगवन्—भगवान्; पर-आत्मन्—हे परमात्मा; योग-ईश्वर—हे योग के स्वामी; ऊतीः—लीलाएँ; भवतः—आपकी; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; क्व—कहाँ; वा—अथवा; कथम्—कैसे; वा—अथवा; कति—कितने; वा—अथवा; कदा—कब; इति—इस प्रकार; विस्तारयन्—विस्तार करते हुए; क्रीडसि—खेलते हो; योग-मायाम्—अपनी आध्यात्मिक शक्ति से।

हे भूमन्, हे भगवन्, हे परमात्मा, हे योगेश्वर, आपकी लीलाएँ इन तीनों लोकों में निरन्तर चलती रहती हैं किन्तु इसका अनुमान कौन लगा सकता है कि आप कहाँ, कैसे और कब अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं और इन असंख्य लीलाओं को सम्पन्न कर रहे हैं? इस रहस्य को कोई नहीं समझ सकता कि आपकी आध्यात्मिक शक्ति किस प्रकार से कार्य करती है।

तात्पर्य : इसके पूर्व ब्रह्माजी कह चुके हैं कि भगवान् कृष्ण देवताओं, मनुष्यों, पशुओं, इत्यादि के बीच अवतरित होते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि अपने अवतारों से भगवान् निराहत होते हैं। जैसाकि ब्रह्माजी यहाँ पर स्पष्ट करते हैं भगवान् के कार्यकलापों की दिव्य प्रकृति को कोई भी नहीं समझ सकता क्योंकि ये उनकी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न होते हैं। वे भूमन् होते हुए भी परम सुन्दर व्यक्ति हैं अर्थात् तिसपर भी वे भगवान् ही हैं, जो अपने धाम में प्रेममयी लीलाएँ करते रहते हैं। इसके साथ ही वे परमात्मा हैं, जो सारे बद्धजीवों के कार्यकलापों की अनुमति देते हैं और उनके साक्षी हैं। योगेश्वर शब्द से भगवान् की विविध पहचान होती है। परम सत्य समस्त योगशक्तियों

के स्वामी हैं। यद्यपि वे एक हैं तथा सर्वोच्च होते हुए भी वे विविध प्रकारों से अपनी महानता तथा ऐश्वर्य प्रदर्शित करते हैं।

ऐसे उच्च आध्यात्मिक विषयों को तुच्छ भौतिक शरीर से स्वयं की पहचान करनेवाले मूर्ख व्यक्ति मुश्किल से समझ पायेंगे। ऐसे बद्धजीव, यथा नास्तिक विज्ञानी अपनी गर्वित बुद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। माया में दृढ़ विश्वास करने के कारण वे प्रकृति के गुणों में फँस जाते हैं और ईश-ज्ञान से दूर धकेल दिए जाते हैं।

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं

स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ।

त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते

मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; इदम्—यह; जगत्—संसार; अशेषम्—सम्पूर्ण; असत्—स्वरूपम्—क्षणिक होने के अर्थ में जिसकी स्थिति असत् है; स्वप्न-आभम्—स्वप्न की तरह; अस्त-धिषणम्—जिसमें चेतनता आच्छादित हो जाती है; पुरु-दुःख-दुःखम्—बारम्बार कष्टों से पूर्ण; त्वयि—तुम में; एव—निस्सन्देह; नित्य—शाश्वत; सुख—सुखी; बोध—चेतना; तनौ—निजी स्वरूप में; अनन्ते—अनन्त; मायातः—माया के द्वारा; उद्यत्—से निकल कर; अपि—यद्यपि; यत्—जो; सत्—असली; इव—मानो; अवभाति—प्रकट होता है।

अतः यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जो कि स्वप्न के तुल्य है प्रकृति से असत् है फिर भी असली (सत्) प्रतीत होता है और इस तरह यह मनुष्य की चेतना को प्रच्छन्न कर लेता है और बारम्बार दुख का कारण बनता है। यह ब्रह्माण्ड सत्य इसलिए लगता है क्योंकि यह आप से उद्भूत माया की शक्ति द्वारा प्रकट किया जाता है जिनके असंख्य दिव्य रूप शाश्वत सुख तथा ज्ञान से पूर्ण हैं।

तात्पर्य : यह ब्रह्माण्ड भोग की वस्तु या बद्धजीवों के स्थायी निवास के रूप में निश्चय ही भ्रम है, स्वप्न के सिवा कुछ नहीं है। कोई यह दृष्टान्त प्रस्तुत कर सकता है कि मरुस्थल में अत्यधिक जल का दृष्टिगोचर होना स्वप्न के सिवाय कुछ नहीं है, यद्यपि असली जल कहीं और रहता है। इसी तरह घर, सुख तथा पदार्थ के भीतर वास्तविकता का दर्शन होना मूर्खों के स्वप्न के सिवाय कुछ नहीं जिसमें बारम्बार कष्ट प्रकट होते हैं।

किन्तु दूसरे अर्थ में ब्रह्माण्ड सत्य है। वेदान्त-सूत्र के भाष्य में श्रील मध्वाचार्य ने वैदिक श्रुति मंत्रों को उद्भूत करते हुए इसकी पुष्टि की है—सत्यं ह्येवेदं विश्वमसृजत—भगवान् द्वारा सृजित यह ब्रह्माण्ड

सत्य है। यद्यपि वेदों का यह सम्यक् प्रमाण ब्रह्माण्ड के सत्य होने की पुष्टि करता है फिर भी माया द्वारा हमारा ज्ञान अपहृत होने के कारण (अस्त-धिषणम् शब्दों से लक्षित), हम इस ब्रह्माण्ड को या इस ब्रह्माण्ड के सृजनकर्ता भगवान् को सही ढंग से जान नहीं सकते। भगवान् कृष्ण का अंश होने के कारण यह ब्रह्माण्ड सत्य है और भगवान् की सेवा में लगे रहने के निमित्त है। जो भगवद्धाम को अपना घर, भगवान् को प्रेम की वस्तु तथा इस ब्रह्माण्ड को भगवान् की सेवा की साज-सामग्री मानता है, वह शाश्वत सत्य के अन्तर्गत निवास करता है, चाहे वह भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत्‌ओं में कहीं भी क्यों न रहे।

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः

सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।

नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः

पूर्णाद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एकः—एक; त्वम्—तुम; आत्मा—परमात्मा; पुरुषः—परम पुरुष; पुराणः—सबसे पुराना; सत्यः—परम सत्य; स्वयम्-ज्योतिः—स्वतः प्रकट; अनन्तः—अन्तहीन; आद्यः—अनादि; नित्यः—शाश्वत; अक्षरः—अनश्वर; अजस्र-सुखः—जिसके सुख में व्यवधान नहीं डाला जा सकता; निरञ्जनः—कल्मषरहित; पूर्ण—पूर्ण; अद्वयः—अद्वितीय; मुक्तः—स्वतंत्र, मुक्त; उपाधितः—सारी भौतिक उपाधियों से; अमृतः—मृत्युरहित, अमर।

आप ही परमात्मा, आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, परम सत्य, स्वयंप्रकट, अनन्त तथा अनादि हैं। आप शाश्वत तथा अच्युत, पूर्ण, अद्वितीय तथा समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त हैं। न तो आपके सुख को रोका जा सकता है, न ही आपका भौतिक कल्मष से कोई नाता है। आप विनाशरहित और अमृत हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने बतलाया है कि इस श्लोक के विविध शब्द इस बात के द्योतक हैं कि भगवान् कृष्ण का शरीर भौतिक शरीरों के गुणों से सर्वथा स्वतंत्र है। सारे भौतिक शरीरों में छह परिवर्तन होते हैं—जन्म, वृद्धि, प्रौढ़ता, प्रजनन, हास तथा विनाश। किन्तु भगवान् कृष्ण जन्म नहीं लेते क्योंकि वे आदि सत्य हैं जैसाकि आद्य शब्द से पुष्ट होता है। हम विशेष वातावरण के अन्तर्गत जन्म लेते हैं और हमारे शरीर विभिन्न भौतिक तत्त्वों के मिश्रणों से बने होते हैं। चूँकि भगवान् कृष्ण किसी भौतिक वायुमण्डल या किसी तत्त्व की सृष्टि के बहुत पहले से विद्यमान हैं अतएव उनके दिव्य शरीर के लिए जन्म लेने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसी तरह पूर्ण शब्द इस धारणा का निराकरण करता है कि कृष्ण इसीलिए बढ़ सके क्योंकि वे सदैव पूर्णता को प्राप्त रहते हैं। जब मनुष्य का शरीर प्रौढ़ हो जाता है, तो वह युवावस्था जैसा आनन्द-भोग नहीं कर सकता लेकिन अजस्र सुख शब्द जिनका अर्थ है “निरंतर सुख को भोगने वाला,” सूचित करते हैं कि भगवान् कृष्ण का शरीर कभी भी तथाकथित मध्यावस्था को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि वह सदैव दिव्य तरुणाई के आनन्द से पूर्ण रहता है। अक्षर शब्द कृष्ण के शरीर के वृद्ध होने या उसके हास की संभावना का निराकरण करानेवाला है। इसी तरह अमृत शब्द मृत्यु की सम्भावना का निषेध करता है।

दूसरे शब्दों में, कृष्ण का दिव्य शरीर भौतिक शरीरों के रूपान्तरों (विकारों) से मुक्त है। किन्तु भगवान् असंख्य जगत्‌ओं की सृष्टि करते हैं और असंख्य जीवों के रूप में अपना विस्तार करते हैं। तो भी भगवान् का यह प्रजनन पूर्णतया आध्यात्मिक है।

भगवान् ने श्रुति में कहा है— पूर्वमेवाहमिहासम्—प्रारम्भ में केवल मैं ही था। इसीलिए यहाँ पर भगवान् को पुरुषःपुराणः कहा गया है। आदि पुरुष अपना विस्तार परमात्मा के रूप में करता है और प्रत्येक जीव में प्रवेश कर जाता है। तो भी अन्ततः वह परम सत्य या कृष्ण रहता है जैसाकि गोपाल तापनी उपनिषद् में कहा गया है—यः साक्षात् परब्रह्मेति गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं वृन्दावनसुरभूरुहतलासीनम्—परम सत्य साक्षात् गोविन्द हैं, जो सच्चिदानन्द विग्रह हैं और वृन्दावन के कल्पवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं। यह परम सत्य भौतिक अज्ञान से परे है और सामान्य आध्यात्मिक ज्ञान से भी परे है जैसाकि गोपाल तापनी श्रुति में ही कहा गया है—विद्याविद्याभ्यां भिन्नः। इस तरह वैदिक साहित्य में भगवान् कृष्ण की श्रेष्ठता अनेक प्रकार से स्थापित की जा चुकी है और यहाँ पर ब्रह्माजी द्वारा उसी की पुष्टि हुई है।

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि

स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।

गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा

ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधम्—इस प्रकार वर्णित; त्वाम्—तुमको; सकल—सभी; आत्मनाम्—आत्माओं के; अपि—निस्सन्देह; स्व-
आत्मनाम्—आत्मा; आत्म-आत्मतया—परमात्मा के रूप में; विचक्षते—देखते हैं; गुरु—गुरु से; अर्क—जो सूर्य के समान है;

लब्ध—प्राप्त; उपनिषत्—गुह्य ज्ञान का; सु-चक्षुषा—पूर्ण आँख से; ये—जो; ते—वे; तरन्ति—पार करते हैं; इव—सरलता से; भव—संसार; अनृत—जो सच नहीं है; अम्बुधिम्—सागर को।

जिन्होंने सूर्य जैसे आध्यात्मिक गुरु से ज्ञान की स्पष्ट दृष्टि प्राप्त कर ली है वे आपको समस्त आत्माओं की आत्मा तथा हर एक के परमात्मा के रूप में देख सकते हैं। इस तरह आपको आदि पुरुषस्वरूप समझकर वे मायारूपी भव-सागर को पार कर सकते हैं।

तात्पर्य : जैसी कि भगवद्गीता (४.९) में पुष्टि की गई है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“जो मेरे प्राकट्य तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह शरीर-त्याग के बाद इस भौतिक जगत में पुनः जन्म नहीं लेता, अपितु हे अर्जुन! वह मेरे धाम को प्राप्त होता है।”

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां

तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।

ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते

रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—अपने को; एव—निस्सन्देह; आत्मतया—परमात्मा के रूप में; अविजानताम्—न जाननेवालों के लिए; तेन—उससे; एव—अकेले; जातम्—उत्पन्न होता है; निखिलम्—सम्पूर्ण; प्रपञ्चितम्—भौतिक जगत; ज्ञानेन—ज्ञान से; भूयः अपि—एक बार पुनः; च—तथा; तत्—वह भौतिक जगत; प्रलीयते—लुप्त हो जाता है; रज्ज्वाम्—रस्सी के भीतर; अहेः—सर्प का; भोग—शरीर का; भव-अभवौ—प्राकट्य तथा विलोप; यथा—जिस तरह।

जिस व्यक्ति को रस्सी से सर्प का भ्रम हो जाता है, वह भयभीत हो उठता है किन्तु यह अनुभव करने पर कि तथाकथित सर्प तो था ही नहीं, वह अपना भय त्याग देता है। इसी प्रकार जो लोग आपको समस्त आत्माओं (जीवों) के परमात्मा के रूप में नहीं पहचान पाते उनके लिए विस्तृत मायामय संसार उत्पन्न होता है किन्तु आपका ज्ञान होने पर वह तुरन्त दूर हो जाता है।

तात्पर्य : जो लोग माया में निमग्न रहते हैं, वे भौतिक जगत को उसी तरह असीम देखते हैं जिस तरह जल में डूबा हुआ व्यक्ति अपने चारों ओर जल ही जल देखता है। उदाहरणार्थ, भौतिक विज्ञानी तथा दार्शनिकगण भव-सागर में निमग्न होने के कारण यह कल्पना करते हैं कि भौतिक प्रकृति का सभी दिशाओं में अनन्त विस्तार है। वस्तुतः भौतिक जगत अज्ञान का सीमित सागर है, जिसमें भगवान् के आदेश से मूर्ख जीव यथा भौतिक विज्ञानी डूबो दिये गये हैं।

जिस जगत में सारी वस्तुएँ उत्पन्न होती और मरती हैं उसमें फँस जाना सचमुच भयावह अनुभव है। स्वाभाविक है कि अंधकारपूर्ण स्थान में फँसा व्यक्ति डर जाता है। चूँकि भौतिक जीवन अज्ञान के अंधकार से सदैव आवृत रहता है इसलिए प्रत्येक बद्धजीव भयभीत रहता है। भौतिक प्रकृति चरमसत्य नहीं है, अतः पदार्थ के विश्लेषण से अन्तिम प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सकता। यह अंधकारपूर्ण सर्प-जैसा जीवन जो कि भौतिक जीवन कहलाता है कृष्णभावनामृत का प्रखर प्रकाश पाते ही आँखें खुलने पर तुरन्त विलुप्त हो जाता है।

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ

द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।

अजस्रचित्यात्मनि केवले परे

विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अज्ञान—अज्ञान से प्रकट होनेवाली; संज्ञौ—उपाधियाँ; भव-बन्ध—संसार का बन्धन; मोक्षौ—तथा मुक्ति; द्वौ—दो; नाम—निस्सन्देह; न—नहीं; अन्यौ—पृथक्; स्तः—हैं; ऋत—सत्य; ज्ञ-भावात्—ज्ञान से; अजस्र-चिति—अबाध चेतना वाला; आत्मनि—आत्मा; केवले—पदार्थ से भिन्न; परे—शुद्ध; विचार्यमाणे—उचित ढंग से पहचानने पर; तरणौ—सूर्य के भीतर; इव—जिस तरह; अहनी—दिन-रात।

भव-बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही अज्ञान की अभिव्यक्तियाँ हैं। सच्चे ज्ञान की सीमा के बाहर होने के कारण, इन दोनों का अस्तित्व मिट जाता है जब मनुष्य ठीक से यह समझ लेता है कि शुद्ध आत्मा, पदार्थ से भिन्न है और सदैव पूर्णतया चेतन है। उस समय बन्धन तथा मोक्ष का कोई महत्व नहीं रहता जिस तरह सूर्य के परिप्रेक्ष्य में दिन तथा रात का कोई महत्व नहीं होता।

तात्पर्य : भव-बन्धन तो भ्रम (मोह) है क्योंकि जीवात्मा का भौतिक जगत से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता। मिथ्या अहंकारवश बद्धजीव अपनी पहचान पदार्थ से करने लगता है। इसलिए तथाकथित मोक्ष एक तरह से भ्रम का परित्याग होता है न कि वास्तविक बन्धन से मुक्ति। तो भी यदि हम भौतिक भ्रम के दुख को वास्तविक मानें और इस तरह मोक्ष को दुख से सार्थक मुक्ति मान लें तो भी वास्तविक आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति की तुलना में भौतिक जगत की अनुपस्थिति नगण्य है। अन्ततोगत्वा कृष्णभावनामृत या शुद्ध भगवत्प्रेम ही महत्वपूर्ण है, सार्थक है और प्रत्येक जीवात्मा का स्थायी पद है।

चूँकि रात्रि का अंधकार सूर्य की अनुपस्थिति के कारण होता है, अतः सूर्य के भीतर रात्रि का

अनुभव नहीं हो सकता, न ही दिन और रात पृथक्-पृथक् लग सकते हैं। इसी तरह शुद्ध जीव के भीतर भौतिक अंधकार नहीं होता अतः ऐसे अंधकार से मुक्ति का अनुभव भी नहीं होता। जब बद्धजीव शुद्ध चेतना के इस स्तर को प्राप्त होता है, तो वह भगवद्धाम में भगवान् की संगति करने का पात्र बन जाता है।

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।

आत्मा पुनर्बहिर्मुग्ध अहोऽज्ञजनताज्ञता ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; आत्मानम्—असली आत्मा; परम्—अन्य कुछ; मत्वा—मानकर; परम्—अन्य कुछ; आत्मानम्—आपको; एव—निस्सन्देह; च—भी; आत्मा—परमात्मा; पुनः—फिर; बहिः—बाहर; मुग्धः—खोजा जाना चाहिए; अहो—ओह; अज्ञ—अज्ञानी; जनता—लोगों की; अज्ञता—अज्ञानता।

जरा उन अज्ञानी पुरुषों की मूर्खता तो देखिये जो आपको मोह की भिन्न अभिव्यक्ति मानते हैं और अपने (आत्मा) को, जो कि वास्तव में आप हैं, अन्य कुछ—भौतिक शरीर—मानते हैं। ऐसे मूर्खजन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परमात्मा की खोज परम पुरुष आप से बाहर अन्यत्र की जानी चाहिए।

तात्पर्य : ब्रह्मा को बद्धजीवों की निपट मूर्खता पर आश्चर्य हो रहा है, जो कृष्ण के परम आध्यात्मिक शरीर को भौतिक मानते हैं। ऐसे लोग भगवान् के आध्यात्मिक स्वरूप से अपरिचित रहने के कारण अपने शरीरों को ही स्व मान बैठते हैं अतएव वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आध्यात्मिक सचाई को परम पुरुष कृष्ण से बाहर खोजना चाहिए। कभी कभी ऐसे मूर्खजन कृष्ण को उन अनेक जीवों में से एक मान बैठते हैं, जो मिलकर निर्विशेष जीव की सृष्टि करते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे ज्ञानी न तो भगवान् के मुख से सुनना चाहते हैं न ही ब्रह्मा सरीखे भगवान् के प्रामाणिक प्रतिनिधियों से। चूँकि वे मनमाने ढंग से परम पुरुष की कल्पना करते हैं अतएव अन्ततः भ्रम एवं अज्ञान ही उनके हाथ लगता है, जिसे वे “जीवन का रहस्य” बताते हैं।

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव

ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।

असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण

सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-भवे—शरीर के भीतर; अनन्त—हे अनन्त प्रभु; भवन्तम्—आप; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; अतत्—आपसे पृथक् हर वस्तु; त्यजन्तः—त्याग करते हुए; मृगयन्ति—खोज करते हैं; सन्तः—सन्त भक्तगण; असन्तम्—अवास्तविक असत्; अपि—भी; अन्ति—पास ही उपस्थित; अहिम्—(भ्रम के) सर्प को; अन्तरेण—के बिना; सन्तम्—असली; गुणम्—रस्सी को; तम्—उस; किम् उ—क्या; यन्ति—जानते हैं; सन्तः—आध्यात्मिक पद को प्राप्त व्यक्ति।

हे अनन्त भगवान्, सन्तजन आपसे भिन्न हर वस्तु का तिरस्कार करते हुए अपने ही शरीर के भीतर आपको खोज निकालते हैं। निस्सन्देह, विभेद करनेवाले व्यक्ति भला किस तरह अपने समक्ष पड़ी हुई रस्सी की असली प्रकृति को जान सकते हैं जब तक वे इस भ्रम का निराकरण नहीं कर लेते कि यह सर्प है?

तात्पर्य : कोई तर्क कर सकता है कि मनुष्य को चाहिए कि आत्म-साक्षात्कार का अनुशीलन करने के साथ ही साथ वह भौतिक शरीर के लिए इन्द्रियतृप्ति में लगा रहे। इसका निराकरण यहाँ पर रस्सी को सर्प समझने के दृष्टांत द्वारा किया गया है। भ्रमवश रस्सी को सर्प समझनेवाला व्यक्ति भयभीत हो उठता है और तथाकथित सर्प के विषय में सोचता है। किन्तु यह पता चल जाने पर कि तथाकथित सर्प वास्तव में रस्सी है उसे भिन्न भाव—राहत—का अनुभव होता है और तब वह रस्सी के प्रति उदासीन हो जाता है। इसी तरह चूँकि हम भौतिक शरीर को भ्रमवश 'स्व' मान लेते हैं अतएव शरीर को ले कर अनेक भावों की हमें अनुभूति होती है। किन्तु यह पता चलने पर कि यह शरीर भौतिक रसायनों की पोटली मात्र है हम ध्यानपूर्वक सोचते हैं कि यह भ्रम किस तरह उत्पन्न हुआ और तब शरीर के प्रति हमारी रुचि नहीं रह जाती। यह जान लेने पर कि हम शरीर के भीतर शाश्वत आत्मा हैं यह स्वाभाविक है कि हम अपना ध्यान असली आत्मा पर एकाग्र करते हैं।

जो लोग सन्त स्वभाव के तथा बुद्धिमान हैं, वे सदैव आध्यात्मिक ज्ञान अर्थात् कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करते हैं क्योंकि वे शरीर को 'स्व' मानने की मूर्खतापूर्ण गलत पहचान को त्याग चुके होते हैं। ऐसे कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों को शरीर के भीतर परमात्मा रूप में वास करनेवाले भगवान् की अनुभूति होती है, जो प्रत्येक जीव का साक्षी एवं मार्गदर्शक है। परमात्मा तथा आत्मा की अनुभूति इतनी सुखद तथा सन्तोषप्रद होती है कि सिद्ध व्यक्ति उन सारी बातों को स्वयमेव छोड़ देता है, जो उसकी आध्यात्मिक प्रगति से सम्बन्ध नहीं रखती।

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-

प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतः; अपि—निस्सन्देह; ते—आपका; देव—हे प्रभु; पद-अम्बुज-द्वय—दो चरणकमलों को; प्रसाद—दया का; लेश—रंचमात्र; अनुगृहीतः—दया दिखाया गया; एव—निश्चय ही; हि—निस्सन्देह; जानाति—जानता है; तत्त्वम्—सत्य; भगवत्—भगवान् की; महिम्नः—महानता का; न—कभी नहीं; च—तथा; अन्यः—दूसरा; एकः—एक; अपि—यद्यपि; चिरम्—दीर्घकाल तक; विचिन्वन्—विचार करते हुए ।

हे प्रभु, यदि किसी पर आपके चरणकमलों की लेशमात्र भी कृपा हो जाती है, तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो लोग भगवान् को समझने के लिए चिन्तन करते हैं, वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको जान नहीं पाते।

तात्पर्य : उपर्युक्त पाठ श्रील प्रभुपाद कृत चैतन्य-चरितामृत (मध्य लीला ६.८४) से उद्धृत किया गया है।

भगवान् कृष्ण उन बद्धजीवों पर जो भगवान् की भ्रामक शक्ति माया से व्यर्थ ही संघर्ष करते रहते हैं अपनी कृपा प्रदान करने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहते हैं। बद्धजीव सुख के लिए इन्द्रियतृप्ति के द्वारा और ज्ञान के लिए मानसिक चिन्तन के द्वारा संघर्ष करता है। इन दोनों विधियों से उसे दुःखमय तथा निराशाजनक स्थिति का सामना करना पड़ता है। किन्तु यदि बद्धजीव भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है और इस तरह उनकी रंचमात्र भी अहैतुकी कृपा प्राप्त कर लेता है, तो सारी स्थिति बदल जाती है और जीव कृष्णभावनामृत में आनन्द तथा ज्ञान का असली जीवन प्रारम्भ कर सकता है।

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो

भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।

येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां

भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; अस्तु—ऐसा ही हो; मे—मेरे; नाथ—हे स्वामी; सः—वह; भूरि-भागः—अहोभाग्य; भवे—जन्म में; अत्र—यह; वा—अथवा; अन्यत्र—किसी अन्य जन्म में; तु—निस्सन्देह; वा—अथवा; तिरश्चाम्—पशुओं में; येन—जिससे; अहम्—मैं; एकः—एक; अपि—भी; भवत्—अथवा आपके; जनानाम्—भक्तों में से; भूत्वा—बनकर; निषेवे—आपकी सेवा में लग सकूँ; तव—तुम्हारे; पाद-पल्लवम्—चरणकमलों में ।

अतः हे प्रभु, मेरी प्रार्थना है कि मैं इतना भाग्यशाली बन सकूँ कि इसी जीवन में ब्रह्मा के

रूप में या दूसरे जीवन में जहाँ कहीं भी जन्म लूँ, मेरी गणना आपके भक्तों में हो। मैं प्रार्थना करता हूँ कि चाहे पशु योनि में ही सही, मैं जहाँ कहीं भी होऊँ, आपके चरणकमलों की भक्ति में लग सकूँ।

अहोऽतिधन्या ब्रजगोरमण्यः

स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।

यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना

यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अति-धन्या:—परम भाग्यशाली; ब्रज—वृन्दावन की; गो—गौवें; रमण्यः—तथा गोपियाँ; स्तन्य—स्तन का दूध; अमृतम्—अमृत के तुल्य; पीतम्—पिया गया; अतीव—पूर्णतया; ते—आपके द्वारा; मुदा—सन्तोष के साथ; यासाम्—जिसका; विभो—हे सर्वशक्तिमान; वत्सतर-आत्मज-आत्मना—बछड़ों तथा ग्वालिनों के पुत्रों के रूप में; यत्—जिसके; तृप्तये—सन्तोष के लिए; अद्य अपि—आज तक; न—नहीं; च—तथा; अलम्—पर्याप्त; अध्वराः—वैदिक यज्ञ।

हे सर्वशक्तिमान भगवान्, वृन्दावन की गौवें तथा स्त्रियाँ कितनी भाग्यशालिनी हैं जिनके बछड़े तथा पुत्र बनकर आपने परम प्रसन्नतापूर्वक एवं संतोषपूर्वक उनके स्तनपान का अमृत पिया है! अनन्तकाल से अब तक सम्पन्न किये गये सारे वैदिक यज्ञों से भी आपको उतना सन्तोष नहीं हुआ होगा।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपब्रजौकसाम् ।

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अहो—कितना बड़ा; भाग्यम्—भाग्य; अहो—कितना महान; भाग्यम्—भाग्य; नन्द—महाराज नन्द का; गोप—अन्य ग्वालियों का; ब्रज-ओकसाम्—ब्रजभूमि के निवासियों का; यत्—जिनके; मित्रम्—मित्र; परम-आनन्दम्—परम आनन्द; पूर्णम्—पूर्ण; ब्रह्म—परम सत्य; सनातनम्—सनातन, नित्य।

नन्द महाराज, सारे ग्वाले तथा ब्रजभूमि के अन्य सारे निवासी कितने भाग्यशाली हैं! उनके सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है क्योंकि दिव्य आनन्द के स्रोत परम सत्य अर्थात् सनातन परब्रह्म उनके मित्र बन चुके हैं।

तात्पर्य : यह अनुवाद प्रभुपाद कृत श्रीचैतन्य-चरितामृत (मध्य लीला ६.१४९) से उद्धृत है।

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-

मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ।

एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः

शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

एषाम्—इनके (वृन्दावन वासियों का); तु—तो; भाग्य—सौभाग्य की; महिमा—महानता; अच्युत—हे अच्युत; तावत्—इतनी; आस्ताम्—हो; एकादश—ग्यारह; एव हि—निस्सन्देह; वयम्—हम; बत—ओह; भूरि-भागाः—परम भाग्यशाली हैं; एतत्—इन भक्तों की; हृषीक—इन्द्रियों से; चषकैः—(जो) प्यालों (की तरह हैं); असकृत्—बारम्बार; पिबामः—हम पी रहे हैं; शर्व-आदयः—शिवजी तथा अन्य प्रमुख देवगण; अङ्घ्रि-उदज—चरणकमल; मधु—शहद; अमृत-आसवम्—जो अमृत तुल्य मादक पेय है; ते—आपका ।

वृन्दावन के इन वासियों की सौभाग्य सीमा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता; फिर भी विविध इन्द्रियों के ग्यारह अधिष्ठाता देवता हम, जिनमें शिवजी प्रमुख हैं, परम भाग्यशाली हैं क्योंकि वृन्दावन के इन भक्तों की इन्द्रियाँ वे प्याले हैं जिनसे हम आपके चरणकमलों का अमृत तुल्य मादक मधुपेय बारम्बार पीते हैं ।

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां

यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिजोऽभिषेकम् ।

यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्द-

स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; भूरि-भाग्यम्—महानतम सौभाग्य; इह—यहाँ; जन्म—जन्म; किम् अपि—कोई भी; अटव्याम्—(वृन्दावन के) जंगल में; यत्—जो; गोकुले—गोकुल में; अपि—भी; कतम—किसी (भक्त) के; अङ्घ्रि—चरणों की; रजः—धूल से; अभिषेकम्—स्नान; यत्—जिसका; जीवितम्—जीवन; तु—निस्सन्देह; निखिलम्—पूरा; भगवान्—भगवान्; मुकुन्दः—मुकुन्द; तु—लेकिन; अद्य अपि—अब भी; यत्—जिसके; पाद-रजः—चरणों की धूल; श्रुति—वेदों द्वारा; मृग्यम्—खोज जानेवाली; एव—निश्चय ही ।

मेरा संभावित परम सौभाग्य यह होगा कि मैं गोकुल के इस वन में जन्म ले सकूँ और इसके निवासियों में से किसी के भी चरणकमलों से गिरी हुई धूल से अपने सिर का अभिषेक करूँ । उनका सारा जीवनसार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मुकुन्द हैं जिनके चरणकमलों की धूल की खोज आज भी वैदिक मंत्रों में की जा रही है ।

तात्पर्य : यह श्लोक इंगित करता है कि ब्रह्माजी वृन्दावन में घास का एक क्षुद्र तिनका भी बनकर जन्म लेने की आकांक्षा करते हैं जिससे भगवद्धाम के पवित्र निवासी उनके सिर के ऊपर से होकर गुजरें और अपने चरणों की धूल से आशीर्वाद दें । यथार्थवादी होने के नाते ब्रह्माजी सीधे भगवान् कृष्ण के चरणों की धूल प्राप्त करना नहीं चाहते; प्रत्युत वे भगवान् के भक्तों की कृपा की कामना करते हैं । श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि ब्रह्माजी भगवान् के घर के आँगन का पत्थर तक बनकर

जन्म लेने की इच्छा करते हैं। चूँकि ब्रह्माजी अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा हैं अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि वृन्दावनवासियों की यशस्वी स्थिति क्या थी।

भगवद्भक्त अनन्य भक्ति तथा प्रेम के द्वारा अपना उच्च पद प्राप्त करते हैं। ऐसा आध्यात्मिक ऐश्वर्य निजी प्रगति की गर्वित भौतिक विधियों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। “भगवान् श्रीकृष्ण” में श्रील प्रभुपाद ने ब्रह्मा के मन की बात का उद्धाटन इस प्रकार किया है, “किन्तु यदि मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूँ कि वृन्दावन के जंगल में जन्म ले सकूँ तो वृन्दावन के आसपास के क्षेत्र में जन्म लेने की मुझे अनुमति दी जाय जिससे जब भक्तगण बाहर जायें तो वे मेरे ऊपर से होकर गुजरें। मेरे लिए यही परम सौभाग्य होगा। मैं तो ऐसे जन्म की आकांक्षा करता हूँ जिसमें भक्तों की चरण-धूल मुझे स्पर्श करती रहे।”

एषां घोषनिवासिनामुत भवान्कि देव रातेति नश्
चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्भामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

एषाम्—इन; घोष-निवासिनाम्—ग्वाल जाति के निवासियों में; उत—निस्सन्देह; भवान्—आप; किम्—क्या; देव—हे भगवन्; राता—प्रदान करेंगे; इति—ऐसा सोचते हुए; नः—हमारा; चेतः—मन; विश्व-फलात्—समस्त वरों के परम स्रोत की अपेक्षा; फलम्—पुरस्कार; त्वत्—आपकी अपेक्षा; अपरम्—दूसरा; कुत्र अपि—कहीं भी; अयत्—विचार करने पर; मुह्यति—मोहित हो जाता है; सत्-वेषात्—भक्त के वेश में; इव—निस्सन्देह; पूतना—पूतना राक्षसी; अपि—भी; स-कुला—अपने परिवारवालों बकासुर तथा अघासुर के साथ; त्वाम्—आपको; एव—निश्चय ही; देव—हे प्रभु; आपिता—प्राप्त कराई गई; यत्—जिसके; धाम—घर; अर्थ—धन; सुहृत्—मित्रगण; प्रिय—प्रिय सम्बन्धीजन; आत्म—शरीर; तनय—सन्तानें; प्राण—प्राण वायु; आशयाः—तथा मन; त्वत्-कृते—आपको समर्पित।

मेरा मन मोहग्रस्त हो जाता है जब मैं यह सोचने का प्रयास करता हूँ कि कहीं भी आपके अतिरिक्त अन्य कोई पुरस्कार (फल) क्या हो सकता है? आप समस्त वरदानों के साकार रूप हैं, जिन्हें आप वृन्दावन के ग्वाल जाति के निवासियों को प्रदान करते हैं। आपने पहले ही उस पूतना द्वारा भक्त का वेश बनाने के बदले में उसे तथा उसके परिवारवालों को अपने आप को दे डाला है। अतएव वृन्दावन के इन भक्तों को देने के लिए आपके पास बचा ही क्या है जिनके घर, धन, मित्रगण, प्रिय परिजन, शरीर, सन्तानें तथा प्राण और हृदय—सभी केवल आपको समर्पित हो चुके हैं?

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् ।

तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तब तक; राग-आदयः—भौतिक आसक्ति इत्यादि; स्तेनाः—चोर; तावत्—तब तक; कारा-गृहम्—जेल, बन्दीगृह; गृहम्—किसी का घर; तावत्—तब तक; मोहः—पारिवारिक स्नेह का मोह; अङ्घ्रि—उनके चरणों में; निगडः—जंजीरें, बेड़ियाँ; यावत्—जब तक; कृष्ण—हे कृष्ण; न—नहीं हो जाते; ते—आपके (भक्त); जनाः—लोग ।

हे भगवान् कृष्ण, जब तक लोग आपके भक्त नहीं बन जाते तब तक उनकी भौतिक आसक्तियाँ तथा इच्छाएँ चोर बनी रहती हैं; उनके घर बन्दीगृह बने रहते हैं और अपने परिजनों के प्रति उनकी स्नेहपूर्ण भावनाएँ पाँवों की बेड़ियाँ बनी रहती हैं ।

तात्पर्य : ऊपरी तौर से, भगवान् कृष्ण के धाम वृन्दावन के निवासी सीधेसादे गृहस्थ हैं, जो गौवों को पालने, भोजन बनाने, बच्चों का पालनपोषण करने तथा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने जैसे सामान्य कामकाजों में लगे रहते हैं। किन्तु ये सारे कार्यकलाप भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में सम्पन्न होते रहते हैं। वृन्दावन के निवासी अपने सारे कार्यकलाप शुद्ध कृष्णभावनामृत में करते हैं अतएव मुक्त जीवन के सर्वोच्च पद पर स्थित रहते हैं। अन्यथा कृष्णभावनामृत से रहित ये ही कार्यकलाप भवबन्धन बन जाते हैं।

अतएव न तो वृन्दावन वासियों के उच्च पद के बारे में किसी प्रकार की भ्रान्ति होनी चाहिए, न ही किसी को केवल सामान्य गृहस्थी के कामकाज को उत्साहपूर्वक किन्तु कृष्णभावना-रहित सम्पन्न करके अपने आपको बड़ा भारी धार्मिक मानना चाहिए। हम अपने परिवार तथा समाज पर रागात्मक आसक्ति केन्द्रित करके कृष्णभावनामृत के प्रगतिशील पथ से विपथ हो जाते हैं। इसके विपरीत, यदि हम अपने परिवार को भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगाते हैं, तो अपने परिवार के पालनपोषण के हमारे सारे प्रयास हमारे प्रगतिशील आध्यात्मिक कर्तव्यों के अंगभूत बन जाते हैं।

निष्कर्ष यह निकला कि वृन्दावनवासियों की अद्वितीय स्थिति का अध्ययन करके हम यह देख सकते हैं कि उनके जीवन का आवश्यक गुण शुद्ध कृष्णभावनामृत है जिसमें किसी भी प्रकार की भौतिक इच्छा या मनोरथ के बिना प्रेमाभक्ति संपन्न की जाती है। आदि भगवान् की ऐसी प्रेमाभक्ति से श्री वृन्दावन धाम में भगवद्धाम का वातावरण तुरन्त उत्पन्न हो जाता है।

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

प्रपञ्चम्—भौतिक; निष्प्रपञ्चः—पूर्णतया आध्यात्मिक; अपि—यद्यपि; विडम्बयसि—आप अनुकरण करते हैं; भू-तले—पृथ्वी पर; प्रपन्न—शरणागत; जनता—लोगों का; आनन्द-सन्दोहम्—नाना प्रकार के आनन्द; प्रथितुम्—विस्तार करने के लिए; प्रभो—हे स्वामी ।

हे स्वामी, यद्यपि भौतिक जगत से आपको कुछ भी लेना-देना नहीं रहता किन्तु आप इस धरा पर आकर अपने शरणागत भक्तों के लिए आनन्द-भाव की विविधताओं को विस्तृत करने के लिए भौतिक जीवन का अनुकरण करते हैं ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में दीपक का प्रकाश उतना उदीप्त नहीं जान पड़ता जितना कि छाया में जान पड़ता है, अथवा एक हीरा चाँदी की थाली में उतना नहीं चमकता जितना कि नीले काँच की तस्तरी में, उसी तरह गोविन्द रूप भगवान् की लीलाएँ वैकुण्ठ धाम में उतनी आश्चर्यजनक नहीं लगतीं जितनी कि माया के भौतिक परिदृश्य में। भगवान् कृष्ण इस धरा में आकर अपने भक्तों के साथ आज्ञाकारी पुत्र, सखा, पति, पिता, मित्र इत्यादि के रूप में व्यवहार करते हैं और संसार के अंधकार में ये तेजस्वी उन्मुक्त लीलाएँ भगवान् के शरणागत भक्तों को असीम आनन्द प्रदान करती हैं ।

श्रील प्रभुपाद ने “ भगवान् श्रीकृष्ण ” में ब्रह्मा के कथन को इस रूप में उद्धृत किया है, “ मैं यह भी समझ सकता हूँ कि छोटे से ग्वालबाल के रूप में आपका प्राकट्य कोई भौतिक कृत्य नहीं है। आप उनके स्नेह से इतने दबे हुए हैं कि आप अपनी दिव्य उपस्थिति से उन्हें अधिकाधिक प्रेमाभक्ति करने के लिए प्रोत्साहित करने यहाँ आते हैं । ”

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

जानन्तः—ऐसे व्यक्ति जो सोचते हैं कि वे आपकी असीम शक्ति से अवगत हैं; एव—निश्चय ही; जानन्तु—ऐसा सोचा करें; किम्—क्या लाभ; बहु-उक्त्या—अनेक वचनों से; न—नहीं; मे—मेरे; प्रभो—हे स्वामी; मनसः—मन का; वपुषः—शरीर का; वाचः—वाणी का; वैभवम्—ऐश्वर्य; तव—आपकी; गो-चरः—परिधि में ।

ऐसे लोग भी हैं, जो यह कहते हैं कि वे कृष्ण के विषय में सब कुछ जानते हैं—वे ऐसा सोचा करें। किन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं इस विषय में कुछ अधिक नहीं कहना चाहता। हे

प्रभु, मैं तो इतना ही कहूँगा कि जहाँ तक आपके ऐश्वर्यों की बात है वे मेरे मन, शरीर तथा शब्दों की पहुँच से बाहर हैं।

तात्पर्य : उक्त कथन श्रील प्रभुपाद कृत *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य-लीला २१.२७) से उद्धृत है।

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अनुजानीहि—कृपया जाने दें; माम्—मुझको; कृष्ण—हे भगवान् कृष्ण; सर्वम्—हर वस्तु; त्वम्—तुम (आप); वेत्सि—जानते हो; सर्व-दृक्—सर्वदर्शी; त्वम्—तुम; एव—अकेले; जगताम्—सारे ब्रह्माण्डों के; नाथः—स्वामी; जगत्—ब्रह्माण्ड; एतत्—यह; तव—आपको; अर्पितम्—अर्पित है।

हे कृष्ण, अब मैं आपसे विदा लेने की अनुमति के लिए विनीत भाव से अनुरोध करता हूँ। वास्तव में आप सारी वस्तुओं के ज्ञाता तथा द्रष्टा हैं। आप समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं फिर भी मैं आपको यह एक ब्रह्माण्ड अर्पित करता हूँ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने “ भगवान् श्रीकृष्ण ” में ब्रह्मा के वचनों को इस प्रकार उद्धृत किया है, “ हे प्रभु, यद्यपि समस्त सृष्टि के परम स्वामी आप हैं किन्तु कभी कभी मैं मिथ्या चिन्तन करता हूँ कि इस ब्रह्माण्ड का स्वामी मैं हूँ। भले ही मैं इस ब्रह्माण्ड का स्वामी होऊँ किन्तु ब्रह्माण्ड असंख्य हैं और उनके अधिष्ठाता ब्रह्मा भी असंख्य हैं। किन्तु उन सबके वास्तविक स्वामी आप हैं। प्रत्येक हृदय में परमात्मा के रूप में आप हर बात के ज्ञाता हैं। अतः आप मुझे अपना शरणागत सेवक स्वीकार करें। आशा है कि आप मुझे अपने मित्रों तथा बछड़ों के साथ लीलाओं में हस्तक्षेप करने के लिए क्षमा कर देंगे। अब यदि आप अनुमति दें तो मैं तुरन्त विदा लूँ जिससे आप मेरी अनुपस्थिति में अपने मित्रों तथा बछड़ों के साथ आनन्दमग्न हो सकें। ”

यहाँ *सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक्* शब्द अत्यन्त सार्थक हैं। कृष्ण सब कुछ जानते हैं और हर वस्तु को देखते हैं अतएव भगवान् के साथ प्रेममय सम्पर्क बनाये रखने के लिए ब्रह्मा का वृन्दावन में रहना आवश्यक नहीं है। वस्तुतः ब्रह्माण्ड के स्रष्टा के रूप में ब्रह्माजी वृन्दावन के सीधेसादे आनन्दमय वातावरण में खप नहीं रहे थे जहाँ भगवान् कृष्ण गौवें चराने, आमोद-प्रमोद करने इत्यादि में अपना परम वैभव प्रदर्शित कर रहे थे।

यह देखने के बाद कि वृन्दावनवासियों में कृष्ण के लिए कितना गहन प्रेम है, ब्रह्मा ने अपने को

वहाँ रहने के अयोग्य समझा। वे भगवान् की संगति छोड़ना तो नहीं चाहते थे किन्तु उन्होंने ब्रह्मलोक में जाकर भक्ति करना श्रेयस्कर समझा। भगवान् को मोहित करने के अपने मूर्खतापूर्ण प्रयास के कारण दुखी तथा चिन्तित ब्रह्माजी ने भगवान् की उपस्थिति का आनन्द-लाभ न उठाकर अपनी आध्यात्मिक प्रेमाभक्ति में फिर से लग जाने को श्रेयस्कर समझा।

श्रीकृष्ण वृष्णि कुलपुष्करजोषदायिन्
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसधु-
गाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-कृष्ण—हे कृष्ण; वृष्णि-कुल—यदु वंश के; पुष्कर—कमल; जोष—आनन्द; दायिन्— देनेवाले; क्ष्मा—पृथ्वी के; निर्जर—देवतागण; द्विज—ब्राह्मण; पशु—तथा जानवर; उदधि—सागर की; वृद्धि—वृद्धि; कारिन्—कारणस्वरूप; उद्धर्म—नास्तिक सिद्धान्तों के; शार्वर—अंधकार को; हर—भगाने वाले; क्षिति—पृथ्वी पर; राक्षस—असुरों का; ध्रुक्—विरोधी; आ-कल्पम्—ब्रह्माण्ड के अन्त तक; आ-अर्कम्—जब तक सूर्य चमकता है; अर्हन्—हे परम पूज्य विग्रह; भगवन्—हे भगवन्; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; ते—आपको।

हे कृष्ण, आप कमल तुल्य वृष्णि कुल को सुख प्रदान करनेवाले हैं और पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण तथा गौवों से युक्त महासागर को बढ़ाने वाले हैं। आप अधर्म के गहन अंधकार को दूर करते हैं और इस पृथ्वी में प्रकट हुए असुरों का विरोध करते हैं। हे भगवन्, जब तक यह ब्रह्माण्ड बना रहेगा और जब तक सूर्य चमकेगा मैं आपको सादर नमस्कार करता रहूँगा।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार ब्रह्माजी यहाँ पर *नाम सङ्कीर्तन* के आनन्द में मग्न हैं जिससे भगवान् कृष्ण के उन विभिन्न पवित्र नामों की महिमा बढ़ती है, जो उनकी विभिन्न लीलाओं की ओर संकेत करते हैं। भगवान् कृष्ण ने दक्षतापूर्वक उस पृथ्वी के असुरों का दमन किया जो कंस, जरासन्ध तथा शिशुपाल जैसे आसुरी राजनीतिज्ञों के प्रादुर्भाव से असह्य हो उठी थी। इसी तरह आधुनिक समाज में ईश्वर से तथाकथित डरने वाले अनेक लोग हैं, जो वास्तव में आसुरी जगत के प्रति आकृष्ट होते हैं। ऐसे लोग सूर्यास्त होते ही मानो जी उठते हैं और अँधेरे में भोजनालयों, नाइटक्लबों, होटलों इत्यादि में जीवन का आनन्द लूटते हैं। ये सारे साधन अवैध यौन, नशा, द्यूत क्रीड़ा तथा मांसाहार के निमित्त होते हैं। इसके अलावा वे लोग हैं, जो अपने को नास्तिक तथा असुर घोषित करते हुए ईश्वर तथा उनके नियमों की अवहेलना करते हैं। ईश्वर के गुप्त तथा प्रकट दोनों प्रकार के शत्रु

पृथ्वी का भार बनते हैं और इस भार को हटाने के लिए ही कृष्ण अवतरित होते हैं।

यहाँ पर ब्रह्माजी अप्रत्यक्ष रूप से कहते हैं कि भगवान् कृष्ण को चाहिए कि उनकी (ब्रह्मा की) सूक्ष्म नास्तिकता को दूर करें जिसके कारण उन्होंने कृष्ण को छलना चाहा था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार ब्रह्मा ने लज्जावश अपने को सत्यलोक से आये *ब्रह्मराक्षस* जैसा अनुभव किया जो भगवान् कृष्ण तथा उनके घनिष्ठ मित्रों एवं बछड़ों को परेशान करने के लिए इस धरा पर आया हो। ब्रह्मा पछता रहे हैं कि यद्यपि कृष्ण परम पूज्य, समस्त ईश्वरों के ईश्वर हैं किन्तु वे उनके सामने सीधेसादे वेश में—लकुटी, शंख, आभूषण, गेरू, मोर पंख इत्यादि से अलंकृत वेश में तथा ग्वालबाल सखाओं के साथ खेलते हुए—प्रकट हुए थे; इसीलिए ब्रह्मा को साहस हुआ कि वे उन्हें ललकारें।

ब्रह्मा की स्तुति के विषय में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं, “ब्रह्मा की यह स्तुति जो सारे संशयों को दूर करनेवाली तथा भक्ति का विस्तार करने वाली है मेरी चेतना की आधारशिला का सुन्दर कौशल बने।”

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।

नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिष्टूय—प्रशंसा करते हुए; भूमानम्—अनन्त भगवान् के प्रति; त्रिः—तीन बार; परिक्रम्य—प्रदक्षिणा करके; पादयोः—उनके चरणों पर; नत्वा—झुककर; अभीष्टम्—वांछित; जगत्—ब्रह्माण्ड का; धाता—स्रष्टा; स्व-धाम—अपने घर को; प्रत्यपद्यत—लौट गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार स्तुति करने के बाद ब्रह्माजी ने अपने आराध्य अनन्त भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की और फिर उनके चरणों पर नतमस्तक हुए। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड के नियुक्त स्रष्टा अपने लोक में लौट आये।

तात्पर्य : यद्यपि ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी कि वे वृन्दावन में या वृन्दावन के निकटवर्ती क्षेत्र में ही घास के तिनके के रूप में जन्म लेना चाहेंगे किन्तु भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा की स्तुति पर मौन संकेत करते हुए यह सूचित किया कि ब्रह्मा अपने घर लौट जाँय। सर्वप्रथम ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड की सृष्टि का सेवाकार्य पूरा करना चाहिए, तत्पश्चात् ही वे वृन्दावन आकर वहाँ के निवासियों का अनुग्रह प्राप्त करें। दूसरे शब्दों में, भक्त को अपनी व्यक्तिगत आध्यात्मिक सेवा को समुचित रूप से सम्पन्न करने के प्रति

सदैव सतर्क रहना चाहिए। यह भगवद्धाम में रहने के प्रयास की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।

वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अनुज्ञाप्य—अनुमति देकर; भगवान्—भगवान्; स्व-भुवम्—अपने पुत्र (ब्रह्मा) को; प्राक्—पहले से; अवस्थितान्—स्थित; वत्सान्—बछड़े; पुलिनम्—नदी के तट पर; आनिन्ये—ले आये; यथा-पूर्व—पहले की तरह; सखम्—जहाँ पर मित्रगण उपस्थित थे; स्वकम्—अपने।

अपने पुत्र ब्रह्मा को प्रस्थान की अनुमति देकर भगवान् ने बछड़ों को साथ ले लिया, जो अब भी वहीं थे जहाँ वे एक वर्ष पूर्व थे और उन्हें नदी के तट पर ले आये जहाँ पर भगवान् स्वयं पहले भोजन कर रहे थे और जहाँ पर उनके ग्वालबाल मित्र पूर्ववत् थे।

तात्पर्य : स्व-भुवम् शब्द, जिसका अर्थ है “अपने पुत्र को,” सूचित करता है कि भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मा द्वारा किये अपराध को क्षमा कर दिया था और उसे अब अपने पुत्र के समान स्नेह कर रहे थे। इस श्लोक में यह कहा गया है कि असली ग्वालबाल सखा तथा बछड़े पूर्ववत् यमुना तट पर तथा जंगल में थे। इससे पूर्व बछड़े जंगल में खो गये थे और कृष्ण उन्हें ढूँढने गये थे। उन्हें न पाकर वे अपने ग्वाल मित्रों से स्थिति पर विचारविमर्श करने लौट आये थे किन्तु वे भी वहाँ से लुप्त हो चुके थे। अब पुनः गौवें जंगल में थीं और भोजन करने के लिए ग्वालबाल नदी के तट पर थे। श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार बछड़े तथा ग्वालबाल क्रमशः जंगल तथा नदी तट पर एक साल तक रहते रहे। ब्रह्माजी वास्तव में उन्हें किसी अन्य स्थान पर नहीं ले गये। भगवान् की सर्वशक्तियुत माया से गोपियों तथा वृन्दावन के अन्य वासियों ने न तो बछड़ों तथा बालकों की ओर ध्यान दिया, न ही बछड़ों तथा बच्चों ने एक वर्ष की अवधि गुजरते देखी या भूख, प्यास अथवा ठंड का अनुभव किया। भगवान् की माया द्वारा ये सारी लीलाएँ नियोजित थीं। ब्रह्मा ने सोचा, “मैंने गोकुल के सारे बालकों तथा बछड़ों को अपनी योगशक्ति की शय्या पर सुला रखा है और वे सब आज तक नहीं जगे हैं। उतनी ही संख्या में बालक तथा बछड़े पूरे वर्ष भर भगवान् कृष्ण के साथ खेलते रहे हैं किन्तु जिन्हें मैंने योगशक्ति द्वारा मोहित किया है उनसे ये भिन्न हैं। तो फिर वे कौन हैं? वे कहाँ से आये?”

भगवान् से कुछ भी अदृश्य नहीं है। इसीलिए भगवान् कृष्ण बछड़ों तथा बालकों को खोजते हुए ब्रह्मा को मोहित करने की नाटकीय लीला का स्वाँग कर रहे थे। जब ब्रह्मा स्तुति कर चुके तो कृष्ण

असली बालकों तथा बछड़ों के पास लौट आये जो बिल्कुल पहले की ही तरह लग रहे थे यद्यपि एक वर्ष की अवधि बीतने के कारण उनके कद में कुछ वृद्धि हो गई थी।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार चूँकि कृष्ण वृन्दावन में भोले-भाले किशोर ग्वालबाल की क्रीड़ा कर रहे थे अतः जब चतुर्मुख ब्रह्मा स्तुति कर चुके तो कृष्ण उनके समक्ष मौन बने रहे। कृष्ण की चुप्पी से निम्नलिखित भाव इंगित होते हैं—“ये चतुर्मुख ब्रह्मा कहाँ से आये? वे क्या कर रहे हैं? वे क्या बोले चले जा रहे हैं? मैं तो अपने बछड़ों की खोज करने में व्यस्त हूँ। मैं तो ग्वालबाल ठहरा। मैं यह सब क्या समझूँ।” ब्रह्मा ने कृष्ण को सामान्य ग्वालबाल समझकर उनके साथ व्यवहार किया था। ब्रह्मा की स्तुति स्वीकार करने के बाद कृष्ण ग्वालबाल की तरह खेलते रहे। उन्होंने चतुर्मुख ब्रह्मा को कोई उत्तर नहीं दिया। कृष्ण को अपने ग्वालबाल मित्रों से मिलने और यमुना नदी के तट पर भोजन करने की अधिक चिन्ता थी।

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ।

कृष्णामायाहता राजन्क्षणार्थं मेनिरेऽर्भकाः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

एकस्मिन्—एक; अपि—यद्यपि; याते—बीत जाने पर; अब्दे—वर्ष; प्राण-ईशम्—उनके प्राणों के स्वामी; च—तथा; अन्तरा—रहित; आत्मनः—उनसे; कृष्ण—कृष्ण की; माया—मायाशक्ति से; आहताः—प्रच्छन्न; राजन्—हे राजन्; क्षण-अर्धम्—आधा क्षण; मेनिरे—सोचा; अर्भकाः—बालकों ने।

हे राजन्, यद्यपि बालकों ने अपने प्राणेश से विलग रहकर पूरा एक वर्ष बिता दिया था किन्तु वे कृष्ण की मायाशक्ति से आवृत कर दिये गये थे अतः उन्होंने उस वर्ष को केवल आधा क्षण ही समझा।

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।

यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्षणं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

किम् किम्—क्या क्या; न विस्मरन्ति—लोग भूल नहीं जाते हैं; इह—इस संसार में; माया-मोहित—माया द्वारा मोहित किये गये; चेतसः—मन वाले; यत्—जिससे; मोहितम्—मोहित हुए; जगत्—संसार; सर्वम्—सम्पूर्ण; अभीक्षणम्—निरन्तर; विस्मृत-आत्मकम्—अपने तक को भूलकर।

जिनके मन भगवान् की मायाशक्ति द्वारा मोहित हों, भला उन्हें क्या नहीं भूल जाता? माया की शक्ति से यह निखिल ब्रह्माण्ड निरन्तर मोहग्रस्त रहता है और इस विस्मृति के वातावरण में

कोई अपनी पहचान नहीं समझ सकता।

तात्पर्य : यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मोहित है। अतः इन्द्र तथा ब्रह्मा जैसे बड़े बड़े देवता तक इस विस्मृति के सिद्धान्त से बचे हुए नहीं हैं। चूँकि भगवान् कृष्ण ने ग्वाल मित्रों तथा बछड़ों पर अन्तरंगा मायाशक्ति का प्रयोग किया अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उन्हें एक वर्ष तक अपनी स्थिति का स्मरण नहीं हुआ। भगवान् की बहिरंगा शक्ति के द्वारा बद्धजीव अपने अस्तित्व को एक वर्ष क्या लाखों वर्ष तक भूले रह सकते हैं क्योंकि वे अज्ञान के लोक में, जिसे भौतिक जगत कहते हैं, देहान्तरण करते रहते हैं।

ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।

नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ऊचुः—बोले; च—तथा; सुहृदः—मित्रगण; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण से; सु-आगतम्—वापस आ गये हो; ते—तुम; अति-रंहसा—बहुत जल्दी; न—नहीं; एकः—एक; अपि—भी; अभोजि—खाया गया है; कवलः—कौर; एहि—आओ; इतः—यहाँ; साधु—ठीक से; भुज्यताम्—अपना भोजन करो।

ग्वाल मित्रों ने भगवान् कृष्ण से कहा “तुम इतनी जल्दी आ गये! तुम्हारी अनुपस्थिति में हमने एक कौर भी नहीं खाया। आओ और अच्छी तरह से अपना भोजन करो।”

तात्पर्य : स्वागतं तेऽतिरंहसा शब्दों से सूचित होता है कि ग्वालबाल कृष्ण को जंगल से इतनी जल्दी बछड़े लौटा लाने के लिए बधाई दे रहे थे। अब कृष्ण के प्रिय मित्र उनसे ठीक से बैठ जाने और जी भर के खाने का अनुरोध करने लगे हैं। श्रील प्रभुपाद कृत “भगवान् श्रीकृष्ण” के अनुसार ग्वाल मित्रों को अतीव हर्ष हुआ और वे अपने प्रिय मित्र कृष्ण के साथ भोजन करने के लिए लालायित थे।

ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहाभकैः ।

दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्ब्रजम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; हसन्—मुसकाते हुए; हृषीकेशः—सबों की इन्द्रियों के स्वामी भगवान् कृष्ण ने; अभ्यवहृत्य—भोजन करते हुए; सह—साथ; अर्भकैः—ग्वालबालों के; दर्शयन्—दिखलाते हुए; चर्म—चमड़ा; आजगरम्—अघासुर अजगर का; न्यवर्तत—लौट आये; वनात्—जंगल से; ब्रजम्—ब्रज के ग्राम को।

तत्पश्चात् भगवान् हृषीकेश ने हँसते हुए अपने गोपमित्रों के साथ अपना भोजन समाप्त किया। जब वे जंगल से ब्रज में स्थित अपने घरों को लौट रहे थे तो भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों

को अघासुर अजगर की खाल दिखलाई ।

बर्हप्रसूनवनधातुविचित्रिताङ्गः

प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।

वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति-

गोपीदृग्दुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

बर्ह—मोरपंख; प्रसून—फूलों; वन-धातु—जंगल के खनिजों से; विचित्रित—अलंकृत; अङ्गः—दिव्य शरीर; प्रोद्दाम—विशाल; वेणु-दल—बाँस की टहनी से बना; शृङ्ग—वंशी की; रव—प्रतिध्वनि से; उत्सव—उत्सव समेत; आढ्यः—दीप्त; वत्सान्—बछड़ों को; गृणन्—पुकारते हुए; अनुग—अपने संगियों द्वारा; गीत—गाया गया; पवित्र—शुद्ध करने वाला; कीर्तिः—उनकी महिमा; गोपी—गोपियों की; दृक्—आँखों के लिए; उत्सव—त्यौहार; दृशिः—उनकी दृष्टि; प्रविवेश—प्रविष्ट हुए; गोष्ठम्—चरागाह में।

भगवान् कृष्ण का दिव्य शरीर मोरपंखों तथा फूलों से सजा था और जंगल के खनिजों से रँगा हुआ था और बाँस की उनकी वंशी उच्च एवं उल्लासपूर्ण स्वर में गूँज रही थी। जब वे बछड़ों का नाम लेकर पुकारते तो उनके ग्वालमित्र उनकी महिमा का गान करते और सारे संसार को पवित्र बना देते। इस तरह कृष्ण भगवान् अपने पिता नन्द महाराज की चरागाह में प्रविष्ट हुए। उनके सौन्दर्य पर दृष्टि पड़ते ही समस्त गोपियों की आँखों के लिए एक महोत्सव सा उत्पन्न हो गया।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यहाँ पर जिन गोपियों का उल्लेख हुआ है वे माता यशोदा जैसी अधिक आयुवाली ग्वालिनें थीं जो कृष्ण को माता-पिता के समान प्यार करती थीं। कृष्ण के ग्वालमित्र उनके अद्भुत कार्यों पर इतने गर्वित थे कि गाँव में प्रवेश करते हुए वे सब उनके गुणों का गायन करने लगे।

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।

हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला ब्रजे जगुः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; अनेन—उनके द्वारा; महा-व्यालः—विशाल सर्प; यशोदा—यशोदा; नन्द—तथा महाराज नन्द के; सूनुना—पुत्र द्वारा; हतः—मारा गया है; अविताः—बचाये गये हैं; वयम्—हम सभी; च—तथा; अस्मात्—उस असुर से; इति—इस प्रकार; बालाः—बालकों ने; ब्रजे—वृन्दावन में; जगुः—गाया।

ब्रज ग्राम पहुँचते ही बालकों ने गुणगान किया, “आज कृष्ण ने एक विशाल सर्प मारकर हम सबों को बचाया है।” कुछ बालकों ने कृष्ण को यशोदानन्दन के रूप में तो कुछ ने नन्द

महाराज के पुत्र के रूप में बखान किया।

तात्पर्य : वास्तव में भगवान् कृष्ण ने अघासुर का वध एक वर्ष पूर्व किया था किन्तु ये बालक ब्रह्मा की योगशक्ति से एक वर्ष तक मोहित रहने के कारण समय को बीतते जान नहीं पाये। अतः उन्होंने सोचा कि भगवान् कृष्ण ने अघासुर का वध उसी दिन किया है और अब उन सबों के साथ घर वापस आ रहे हैं।

श्रीराजोवाच

ब्रह्मन्परोद्धवे कृष्णो इयान्प्रेमा कथं भवेत् ।

योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्धवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शुकदेव; पर-उद्धवे—दूसरे की सन्तान; कृष्णो—कृष्ण के लिए; इयान्—इतना अधिक; प्रेमा—प्रेम; कथम्—क्यों; भवेत्—हो सकता है; यः—जो; अभूत-पूर्वः—अभूतपूर्व; तोकेषु—बालकों के लिए; स्व-उद्धवेषु—अपने ही जन्मे; अपि—भी; कथ्यताम्—कृपया बतलाइये।

राजा परीक्षित ने कहा, “हे ब्राह्मण, ग्वालों की पत्नियों में एक पराये पुत्र कृष्ण के लिए ऐसा अभूतपूर्व शुद्ध प्रेम किस प्रकार उत्पन्न हुआ—ऐसा प्रेम जिसका अनुभव उन्हें अपने पुत्रों के प्रति भी नहीं उत्पन्न हुआ? कृपया इसे बतलाइये।”

श्रीशुक उवाच

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः ।

इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सर्वेषाम्—समस्त; अपि—निस्सन्देह; भूतानाम्—जीवों में; नृप—हे राजन्; स्व-आत्मा—अपनी ही आत्मा, स्व; एव—निश्चय ही; वल्लभः—प्रियतम; इतरे—अन्य; अपत्य—सन्तानें; वित्त—धन; आद्याः—इत्यादि; तत्—उस आत्मा के; वल्लभतया—प्रियत्व पर आश्रित; एव हि—निस्सन्देह।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, प्रत्येक प्राणी के लिए स्वयं ही सर्वाधिक प्रिय होता है। सन्तान, धन इत्यादि अन्य समस्त वस्तुओं की प्रियता केवल आत्म-प्रियता के कारण है।

तात्पर्य : कभी कभी आधुनिक चिन्तक नैतिक आचरण के मनोविज्ञान का अध्ययन करते समय चकरा जाते हैं। जैसाकि यहाँ पर बतलाया गया है, कि प्रत्येक जीव आत्म-रक्षण के प्रति उन्मुख रहता है किन्तु कभी-कभी कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ की बलि—यथा अन्यो के लाभ के लिए अपना धन

देकर या राष्ट्रीय हित के लिए अपना जीवन देकर—स्वेच्छा से कर देता है। ऐसा तथाकथित निस्वार्थ आचरण भौतिक आत्म-केन्द्रता तथा आत्म-रक्षण के सिद्धान्त का विरोधी प्रतीत होता है।

किन्तु जैसाकि इस श्लोक में बतलाया गया है जीव अपने समाज, राष्ट्र, परिवार इत्यादि की सेवा इसीलिए करता है क्योंकि ये प्रिय वस्तुएँ मिथ्या अहंकार की विस्तारित विचारधारा को ही प्रदर्शित करने वाली हैं। देशभक्त अपने को महान् राष्ट्र के महान् सेवक के रूप में देखता है अतएव वह अपने अहंभाव की तुष्टि के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर देता है। इसी तरह यह सुपरिचित तथ्य है कि मनुष्य अपनी पत्नी तथा अपनी सन्तान को प्रसन्न करने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। अपने को अपने परिवार तथा अपनी जाति के निस्वार्थ शुभचिन्तक के रूप में देखते हुए मनुष्य को परम अहमन्यता का सुख प्राप्त होता है। ऐसा विरोधमूलक आचरण भौतिक जीवन के माया-मोह का अन्य प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो अलौकिक आत्मा के निपट अज्ञान की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; यथा—जिस तरह; स्नेहः—स्नेह; स्व-स्वक—प्रत्येक व्यक्ति की; आत्मनि—आत्मा के लिए; देहिनाम्—देहधारी प्राणियों के; न—नहीं; तथा—उसी तरह; ममता-आलम्बि—उसके लिए जो अपने को अपनी वस्तुओं के रूप में मानता है; पुत्र—पुत्र; वित्त—धन; गृह—घर; आदिषु—इत्यादि में।

अतएव इसीलिए हे राजाओं में श्रेष्ठ, देहधारी जीव आत्मकेन्द्रित होता है। वह सन्तान, धन तथा घर इत्यादि वस्तुओं की अपेक्षा अपने शरीर तथा अपनी ओर अधिक आसक्त होता है।

तात्पर्य : अब सारे विश्व में यह प्रचलन हो गया है कि यदि माता को किसी सन्तान को जन्म देने में असुविधा होती है, तो वह अपने गर्भ के भीतर ही उस सन्तान को मार डालती है। इसी तरह बड़े होने पर सन्तानें अपनी सुविधा के लिए वृद्ध माता-पिता को घर में न रखकर अनाथालयों में रख देती हैं। ये तथा अन्य सैकड़ों उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि लोग सामान्यतया अपने शरीर तथा अपनी ओर अधिक अनुरक्त रहते हैं क्योंकि ये “अहंभाव” के सूचक हैं जबकि परिवार तथा अन्य वस्तुएँ “ममत्व” की सूचक हैं। यद्यपि बद्धजीव अपने समाज, परिवार इत्यादि के प्रति प्रेम पर बहुत गर्व का अनुभव करते हैं किन्तु वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक बद्ध आत्मा स्थूल या सूक्ष्म स्वार्थ के स्तर पर

ही कर्म करता है।

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।

यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देह-आत्म-वादिनाम्—शरीर को ही आत्मा मानने वाले; पुंसाम्—मनुष्यों के लिए; अपि—निस्सन्देह; राजन्य-सत्-तम—हे राजाओं में श्रेष्ठ; यथा—जिस तरह; देहः—शरीर; प्रिय-तमः—सर्वाधिक प्रिय; तथा—उसी प्रकार; न—नहीं; हि—निश्चय ही; अनु—की तुलना में; ये—जो वस्तुएँ; च—तथा; तम्—उसको।

हे राजाओं में श्रेष्ठ, जो लोग शरीर को ही अपना सर्वस्व मानते हैं उनके लिए वे वस्तुएँ

जिनका महत्व शरीर के लिए होता है कभी भी शरीर जितनी प्रिय नहीं होतीं।

देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ।

यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

देहः—शरीर; अपि—भी; ममता—स्वामित्व का; भाक्—केन्द्रबिन्दु; चेत्—यदि; तर्हि—तब; असौ—वह शरीर; न—नहीं; आत्म-वत्—आत्मा के समान; प्रियः—प्रिय; यत्—क्योंकि; जीर्यति—वृद्ध होते हुए; अपि—भी; देहे—शरीर में; अस्मिन्—इस; जीवित-आशा—जीवित रहने की आकांक्षा; बलीयसी—अत्यन्त प्रबल।

यदि मनुष्य शरीर को “मैं” न मानकर “मेरा” मानने की अवस्था तक पहुँच जाता है, तो वह निश्चित रूप से शरीर को अपने आप जितना प्रिय नहीं मानेगा। यही कारण है कि शरीर के जीर्णशीर्ण हो जाने पर भी जीवित रहते जाने की आशा प्रबल रहती है।

तात्पर्य : यहाँ पर *ममताभाक्* शब्द अत्यन्त सार्थक है। सामान्य मूर्ख व्यक्ति सोचता है कि “मैं यह शरीर हूँ।” किन्तु अधिक विवेकवान बुद्धिमान व्यक्ति सोचता है कि “यह मेरा शरीर है।” साहित्य में तथा सामान्य लोगों की लोक-कथाओं में वृद्ध एवं जर्जर व्यक्ति में एक नया तरुण शरीर प्राप्त करने की अभिलाषा सामान्यतया पायी जाती है। इस तरह सामान्य व्यक्तियों तक में आत्म-साक्षात्कार का विचार पैदा हो जाता है और वे सहजभाव से समझते हैं कि अनेक शरीरों में आत्मा के लिए रह पाना सम्भव है।

बुद्धिमान व्यक्ति का शरीर ज्यों ज्यों जीर्णशीर्ण होता जाता है उसमें जीवित रहने की आकांक्षा बलवती होती जाती है, यद्यपि वह यह जानता रहता है कि उसका शरीर अधिक काल तक चल नहीं सकता। इससे यह सूचित होता है कि धीरे धीरे वह इस तथ्य से अवगत होता जाता है कि इस शरीर

की तुलना में उसकी आत्मा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस तरह जीविताशा से मनुष्य अप्रत्यक्षतः आत्म-साक्षात्कार की प्रारम्भिक जानकारी की ओर जाने लगता है। मनुष्य की मूलभूत आसक्ति अपनी आत्मा से रहती है, अपने से सम्बद्ध वस्तुओं से नहीं।

यहाँ यह इंगित कर दिया जाय कि राजा परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी के बीच आत्मा के प्रियत्व को लेकर होनेवाला समूचा संवाद इस विषय को छेड़ना है कि वृन्दावन की गौवें तथा गोपियाँ कृष्ण को अपने आप से भी अधिक प्रिय, यहाँ तक कि अपनी सन्तानों से भी अधिक प्रिय क्यों मानती थीं। यह संवाद आगे बढ़ता है।

तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; प्रिय-तमः—अत्यन्त प्रिय; स्व-आत्मा—अपनी आत्मा; सर्वेषाम्—समस्त; अपि—निस्सन्देह; देहिनाम्—देहधारी जीवों के लिए; तत्-अर्थम्—उसी के हेतु; एव—निश्चय ही; सकलम्—सम्पूर्ण; जगत्—संसार; एतत्—यह; चर-अचरम्—चर तथा अचर जीवों समेत।

इसलिए हर देहधारी जीव को अपना आप (स्वात्म) ही सर्वाधिक प्रिय है और इसी की तुष्टि के लिए यह समस्त चराचर जगत विद्यमान है।

तात्पर्य : चराचरम् शब्द पशु जैसे सचल और वृक्ष जैसे अचल प्राणियों का द्योतक है। अथवा यह शब्द चल सम्पत्ति यथा परिवार तथा पालतू पशुओं एवं अचल सम्पत्ति यथा घर-बार का भी द्योतक है।

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; एनम्—इन; अवेहि—समझने का प्रयत्न करो; त्वम्—तुम; आत्मानम्—आत्मा को; अखिल-आत्मनाम्—समस्त जीवों के; जगत्-हिताय—सारे ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु; सः—वह; अपि—निश्चय ही; अत्र—यहाँ; देही—मानव; इव—सदृश; आभाति—प्रकट होता है; मायया—अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा।

तुम कृष्ण को समस्त जीवों की आदि आत्मा करके जानो। वे अपनी अहैतुकी कृपावश, समस्त जगत के लाभ हेतु, सामान्य मानव के रूप में प्रकट हुए हैं। ऐसा उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति के बल पर किया है।

तात्पर्य : चैतन्य-चरितामृत (मध्य लीला, २०.१६२) में श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की टीका इस

प्रकार की है : “परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि वृन्दावन के वासियों को कृष्ण इतने प्रिय क्यों हैं—वे उन्हें अपनी सन्तान या अपने जीवन से भी अधिक प्यार करते हैं? श्री शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि देहधारी सारे जीवों को अपनी आत्मा सर्वाधिक प्रिय है। किन्तु यह आत्मा कृष्ण का अंश है अतएव कृष्ण हर जीव को अत्यन्त प्रिय हैं। हर एक को अपना शरीर अत्यन्त प्रिय है और वह सभी प्रकार से अपने शरीर की रक्षा करना चाहता है क्योंकि शरीर के भीतर आत्मा का निवास है। आत्मा तथा शरीर के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण ही शरीर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और हर एक को प्रिय है। इसी प्रकार कृष्ण का अंश होने से आत्मा हर जीव को अत्यधिक प्रिय है। दुर्भाग्यवश आत्मा अपनी वैधानिक स्थिति भूल जाता है और अपने को मात्र शरीर समझता है (देहात्मबुद्धि)। फलतः आत्मा को भौतिक प्रकृति के विधिविधानों को मानना पड़ता है। जब जीव अपनी बुद्धि के बल से कृष्ण के प्रति अपने आकर्षण को जागृत करता है, तो उसकी समझ में आता है कि वह शरीर नहीं अपितु कृष्ण का अंश है। इस तरह ज्ञान से पूरित होने पर वह शरीर तथा शरीर से सम्बद्ध वस्तुओं के प्रति अनुरक्ति के वशीभूत होकर श्रम नहीं करता (जनस्य मोहोऽयमहं ममेति)। यह जगत भी जिसमें मनुष्य सोचता है कि “मैं शरीर हूँ और यह मेरा है,” मायामय है। मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण के प्रति ध्यान लगाये। श्रीमद्भागवत (१.२.७) में कहा गया है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम् ॥

“भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करने से मनुष्य को अहैतुक ज्ञान तथा संसार से विरक्ति प्राप्त होती है।”

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णां स्थासु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्वह किञ्चन ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

वस्तुतः—वास्तव में; जानताम्—जानने वालों के लिए; अत्र—इस संसार में; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; स्थासु—अचल; चरिष्णु—चल; च—तथा; भगवत्-रूपम्—भगवान् का प्रकट रूप; अखिलम्—सर्वस्व; न—कुछ भी नहीं; अन्यत्—अन्य; वस्तु—वस्तु; इह—यहाँ; किञ्चन—तनिक भी।

इस जगत में जो लोग भगवान् कृष्ण को यथारूप में समझते हैं, वे समस्त चर या अचर वस्तुओं को भगवान् के व्यक्त रूप में देखते हैं। ऐसे प्रबुद्ध लोग भगवान् कृष्ण से परे अन्य

किसी यथार्थ (वास्तविकता) को नहीं मानते ।

तात्पर्य : प्रत्येक वस्तु कृष्ण में और प्रत्येक वस्तु में कृष्ण विद्यमान रहते हैं । फिर भी प्रगमन की दिशा शक्तिमान से विस्तारित शक्ति की ओर होती है । भगवान् कृष्ण आदि सत्ता हैं जिनसे अन्य सारी सत्ताएँ उद्भूत होती हैं । वे परम शक्तिमान हैं जिनसे सभी प्रकार की शक्तियाँ प्रकट होती हैं । इस तरह हमारे शरीर, आत्मा, परिवार, मित्र, राष्ट्र, लोक, ब्रह्माण्ड इत्यादि भगवान् की ही अभिव्यक्तियाँ हैं, जो अपनी निजी शक्तियों के माध्यम से विस्तार करते हैं । निश्चय ही कृष्ण हमारे प्रेम तथा आकर्षण के चरम लक्ष्य हैं जबकि शरीर, परिवार तथा घर गौण लक्ष्य हैं । यही नहीं, प्रेम के ये गौण लक्ष्य भी कृष्ण की ही अभिव्यक्तियाँ हैं । निष्कर्ष यही है कि भगवान् कृष्ण हमारे एकमात्र मित्र तथा प्रेम के लक्ष्य हैं ।

श्रील प्रभुपाद ने इस श्लोक की टीका “ भगवान् श्रीकृष्ण ” में इस प्रकार की है : “ कृष्ण का अंश हुए बिना कोई भी वस्तु आकर्षक नहीं बन सकती । विश्व में जो भी आकर्षक है, वह कृष्ण के कारण है । अतएव कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं । कृष्ण हर वस्तु के सार हैं और उच्च अध्यात्मवादी प्रत्येक वस्तु को उनसे सम्बन्धित देखते हैं । *चैतन्य-चरितामृत* में कहा गया है कि *महाभागवत* अर्थात् उच्च श्रेणी का भक्त कृष्ण को समस्त चराचर जीवों का सक्षम आधार मानता है । इसलिए वह इस जगत की प्रत्येक वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित देखता है । ”

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।

तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

सर्वेषाम्—सभी; अपि—निस्सन्देह; वस्तूनाम्—वस्तुओं का; भाव-अर्थः—प्रकृति की आदि अव्यक्त कारण-अवस्था; भवति—होती है; स्थितः—स्थापित; तस्य—अव्यक्त प्रकृति का; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; किम्—क्या; अतत्—उन्से पृथक्; वस्तु—वस्तु; रूप्यताम्—निर्धारित की जा सकती है ।

प्रकृति का आदि अव्यक्त रूप समस्त भौतिक वस्तुओं का स्रोत है और यहाँ तक कि इस सूक्ष्म प्रकृति के स्रोत तो भगवान् कृष्ण हैं । तो भला उनसे पृथक् किसको कहा जा सकता है ?

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

समाश्रिताः—शरणागत; ये—जो लोग; पद—पैरों का; पल्लव—फूल की कलियों के समान; प्लवम्—नौका रूप; महत्—सम्पूर्ण जगत के अथवा महात्माओं के; पदम्—शरण; पुण्य—अत्यन्त पुनीत; यशः—जिनका यश; मुर-अरेः—मुर नामक असुर के शत्रु का; भव—संसार का; अम्बुधिः—सागर; वत्स-पदम्—बछड़े का खुर; परम् पदम्—परम धाम, वैकुण्ठ; पदम् पदम्—पग पग पर; यत्—जहाँ; विपदाम्—विपदाएँ; न—एक भी नहीं; तेषाम्—उनके लिए।

दृश्यजगत के आश्रय एवं मुर राक्षस के शत्रु मुरारी के नाम से प्रसिद्ध भगवान् के चरणकमल रूपी नाव को जिन्होंने स्वीकार किया है उनके लिए यह भव-सागर बछड़े के खुर चिन्ह में भरे जल के समान है। उनका लक्ष्य परं पदम् अर्थात् वैकुण्ठ होता है जहाँ भौतिक विपदाओं का नामोनिशान नहीं होता, न ही पग पग पर कोई संकट होता है।

तात्पर्य : उपर्युक्त उद्धरण श्रील प्रभुपाद लिखित भगवद्गीता यथारूप की टीका (२.५१) से लिया गया है। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार इस श्लोक में श्रीमद्भागवत के इस अध्याय का सार प्रस्तुत किया गया है। भगवान् कृष्ण के चरणकमलों को पल्लव कहा गया है क्योंकि वे अत्यन्त कोमल तथा गुलाबी रंग के हैं। श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार पल्लव शब्द से यह भी सूचित होता है कि भगवान् कृष्ण के चरणकमल कल्पवृक्ष के समान हैं, जो भगवान् के शुद्ध भक्तों की सारी इच्छाओं को पूरा करनेवाले हैं। श्रीनारद जैसे उच्चस्थ भक्त, जो स्वयं इस ब्रह्माण्ड के बद्धजीवों के परम आश्रय हैं, भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं। अतः स्वाभाविक है कि जब भगवान् कृष्ण वृन्दावन के समस्त ग्वालबालों तथा बछड़ों के रूप में अपने को प्रकट करते हैं, तो उनके माता-पिता पहले की अपेक्षा उनके प्रति अधिक आकृष्ट होते हैं। भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और सर्वाकर्षक होने के कारण हर एक के प्रेम के चरम लक्ष्य हैं।

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्ठोऽहमिह त्वया ।

तत्कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ते—आपसे; सर्वम्—सभी; आख्यातम्—वर्णन किया; यत्—जो; पृष्ठः—पूछा गया; अहम्—मैंने; इह—इस सम्बन्ध में; त्वया—तुम्हारे द्वारा; तत्—वह; कौमारे—बाल्यकाल में (पाँच वर्ष की अवस्था में); हरि-कृतम्—भगवान् हरि द्वारा सम्पन्न; पौगण्डे—बाल्यकाल के बाद (छठे वर्ष से लेकर आगे); परिकीर्तितम्—गुणानुवाद किया हुआ।

चूँकि आपने मुझसे पूछा था इसलिए मैंने भगवान् हरि की उन लीलाओं का संपूर्ण वर्णन किया जो उन्होंने अपनी आयु के पाँचवें वर्ष में सम्पन्न की थीं किन्तु छठा वर्ष लगने तक प्रशस्त नहीं हुई थीं।

एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-

रघार्दनं शाद्वलजेमनं च ।

व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं

शृण्वन्गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये; सुहृद्भिः—अपने ग्वाल मित्रों के साथ; चरितम्—लीलाएँ; मुरारेः—भगवान् मुरारी की; अघ-अर्दनम्—अघासुर का दमन; शाद्वल—जंगल की घास पर; जेमनम्—भोजन करते हुए; च—तथा; व्यक्त-इतरत्—अलौकिक; रूपम्—भगवान् का दिव्य रूप; अज—ब्रह्मा द्वारा; ऊरु—विस्तृत; अभिष्टवम्—स्तुति; शृण्वन्—श्रवण; गृणन्—कीर्तन; एति—प्राप्त करता है; नरः—कोई मनुष्य; अखिल-अर्थान्—सारी मनवांछित वस्तुएँ।

मुरारी द्वारा ग्वालबालों के साथ सम्पन्न इन लीलाओं को—यथा अघासुर वध, जंगल की घास पर बैठकर भोजन करना, भगवान् द्वारा दिव्य रूपों का प्राकट्य तथा ब्रह्मा द्वारा की गई अद्भुत स्तुति को जो भी व्यक्ति सुनता है या उनका कीर्तन करता है उसकी सारी आध्यात्मिक मनोकामनाएँ अवश्य पूरी होती हैं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार भगवान् कृष्ण की लीलाओं को सुनने तथा उनका कीर्तन करने के प्रति मात्र प्रवृत्ति रखनेवाला व्यक्ति भी आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करेगा। कृष्णभावनामृत के प्रचार-प्रसार में तन्मयता से लगे बहुत से भक्तगण प्रायः इतने व्यस्त रहते हैं कि वे जी भरकर भगवान् की लीलाओं का कीर्तन तथा श्रवण नहीं कर पाते। किन्तु केवल भगवान् कृष्ण का सदैव कीर्तन एवं श्रवण करने की प्रबल इच्छा के कारण वे आध्यात्मिक सिद्धि लाभ करेंगे। किन्तु जहाँ तक सम्भव हो, भगवान् की इन दिव्य लीलाओं का वास्तविक उच्चारण करना चाहिए।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।

निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विहारैः—लीलाओं से; कौमारैः—बाल्यकाल की; कौमारम्—पाँच वर्ष तक की बाल्यावस्था; जहतुः—उन्होंने बिता दी; व्रजे—व्रजभूमि में; निलायनैः—आँखमिचौनी खेल में; सेतु-बन्धैः—पुल बनाने में; मर्कट-उत्प्लवन—बन्दरकूद; आदिभिः—इत्यादि में।

इस प्रकार व्रज भूमि में आँखमिचौनी का खेल खेलते, खेल में ही पुल बनाते, बन्दरों की तरह कूदफाँद करते तथा अन्य ऐसे ही खेलों में लगे रहकर बालकों ने अपना बाल्यकाल बिताया।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी के अनुसार *निलायनै* शब्द लुका-छिपी या आँखमिचौनी जैसे खेलों का द्योतक है। कभी कभी बालकगण भगवान् रामचन्द्र की सेना के बन्दरों की तरह कूदते और तालाबों या झीलों में पुल बनाकर श्रीलंका में बन्दरों द्वारा सेतु बनाने की नकल करते। कभी ये बालक क्षीरसागर मन्थन की नकल उतारते और कभी गेंद खेलते। आध्यात्मिक जगत में हमें पूर्ण आनन्द मिल सकता है बशर्ते कि हर कार्य शुद्ध भगवत्प्रेम अर्थात् कृष्णभावनामृत में सम्पन्न किया जाय।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की स्तुति” नामक चौदहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।